आत्मत्याग की भूमिका

[मनोविश्लेषणात्मक सामाजिक उपन्यास]

उपन्यासकार
भगवतीप्रसाद वाजपेयी

पहले अमिता खिलखिलाकर हँस पड़ी; फिर अपनी मोहक भंगिमा के तेवर में दोनों कंधे उचकाकर बोली—"क्या कहा, विवाह !"

विस्मय के साथ वह अब भी मन्द-मन्द मुस्करा रही थी। उसमें विनोद की मात्रा कम थी, उपहास की अधिक। शायद वह सोचती थी—"कितनी मूर्खता से भरी बात है—कितनी बुद्धिमत्ता से हीन !"

राकेश कुछ हतप्रभ हो उठा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि उसके प्रस्ताव में ऐसी कौन-सी बात है, जो अमिता के लिए मनोरंजन का कारण बन गयी !

तब अपने विचारों को कुछ सन्तुलित करके वह बोला—"हाँ-हाँ विवाह। सच पूछो तो अब हम लोगों के सम्मुख इसके सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है।"

इतने में अमिता सहसा पलँग से उठकर खड़ी हो गयी। साड़ी की सलवटें ठीक करती-करती वह ड्रेसिंग टेबिल के सामने पड़े हुए स्टूल पर बैठकर अपने बिखरे हुए बालों पर कंघा फेरने लगी।

अब उसके मन में भी आ रहा था—"स्थिति स्पष्ट हो जाय, यही अच्छा है।" पर उसके मौन ने राकेश का धैर्य विचलित कर दिया। वह बोला—"बड़े आश्चर्य की बात है कि इतने गम्भीर प्रश्न का तुम इस भाँति उपहास कर रही हो !"

अमिता ने कंघी रख दी। स्टूल से उठकर वह राकेश के सम्मुख जा खड़ी हुई। आत्मीयता के साथ उसने राकेश के मस्तक तक बढ़ते हुए केशों की लटों को विधिवत् सँवारते हुए कहा—"विवाह को तो मैं मनुष्य की स्वतन्त्र सत्ता के लिए मृत्यु के समान घातक समझती हूँ।

श्रौर तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मरना मैं श्रभी नहीं चाहती।"

अमिता की इस बात को सुनकर राकेश विस्मय में पड़ गया। गम्भीरता के साथ उसने उत्तर दिया—"पर वास्तव में सत्य इसके विपरीत है। दो प्रेमी हृदय, विवाह के सूत्र में बँधकर ही, वास्तव में जीवन का श्रमृत पान करते हैं।"

श्रमिता के नयनों में सहसा एक चमक उत्पन्न हो गयी। उसने जैसे चौंकते हुए उत्तर दिया—"दो प्रेमी हृदय !" श्रौर कथन के साथ उसने राकेश के गले में श्रपनी दोनों बाँहों का हार डाल दिया।

तब राकेश उसके इस निमन्त्रण की उपेक्षा न कर सका। उसने श्रमिता के कम्पित श्रधरों पर प्यार-चिह्न अंकित कर दिया। फलतः श्रमिता ने कुछ ऐसा संकेत कर दिया कि—!

श्रब राकेश एक सभ्य मानव के स्तर पर लौट श्राया था। श्रनेक प्रकार की कल्पनाएँ उसे बार-बार घेर लेती थीं। यौन-तृप्ति सम्बन्धी कई पुस्तकें पढ़ चुका था। पर जो श्रनुभव उसे श्राज हुश्रा था, उसके सम्मुख जैसे तुच्छ हो गया था ! प्राणों का ऐसा मधुर स्पन्दन ! तो सचमुच जीवन बड़ा प्यारा होता है !

उसका सारा व्यतीत श्रब फीका पड़ गया था। श्रौर भविष्य की तो वह कल्पना ही कर सकता था। लेकिन ये क्षण दोनों के बीच एक पुल के समान थे। वह उस पुल को पार कर चुका है, जो श्रब कभी नहीं लौटेगा। यह माना कि वह क्षणिक था, किन्तु था कितना उन्मद ! मान कि वह एक स्वप्न था, किन्तु फिर जीवन में यथार्थ क्या है ! कुछ ही मिनटों के बाद वह धरती पर श्रा गया। उसे ध्यान हो श्राया, यदि श्रमिता उठकर चली गयी तो उसका प्रश्न श्रधूरा ही रह जायेगा।

तभी उसने श्रमिता का हाथ पकड़ कर उसे श्रपनी श्रोर इस भाँति

खींच लिया कि वह अपनी देहलता का सन्तुलन न सम्हाल सकी और उसके वक्ष पर लुढ़क गयी। पर फिर तुरन्त उठने की चेष्टा करती हुई बोली—"हटो, तुम बड़े दुष्ट निकले !"

राकेश को उसका यह कथन बड़ा प्यारा लगा। वह अपना उद्देश्य ही भूल गया। वह अपने प्रति सोचने लगा—क्या वह सदा ऐसा ही दुष्ट रहा है ? और क्या दुष्टता भी प्यार की एक संज्ञा है ? या ऐसा कुछ है कि यदि भूखे व्यक्ति को प्रीति-भोज का निमंत्रण मिल जाय तो वह खाते समय परिणाम का ध्यान अवश्य रखेगा ? चिन्ता छोड़कर खाना क्या उसके लिए स्वाभाविक नहीं ?

लेकिन फिर उसके मन में आया—यह सब तो ठीक है। लेकिन हर भूख की एक सीमा होती है।

इसी चिन्तन में राकेश जब शीशे के सामने खड़ा हुआ टाई बाँध रहा था, तो उसके मन में आया कि प्रस्थान के पूर्व विवाह की स्वीकृति ले लेना आवश्यक है। अपनी इष्टदेवी को घर में स्थापित किये बिना अब वह रहेगा कैसे ?

किन्तु टाई बाँधकर जब वह अमिता की ओर घूम पड़ा, तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह सो गयी है।

ओ' इस निद्रा में कितनी शान्ति है. कितना मधुर-मधुर सौख्य ! तरल किन्तु स्निग्ध !

वह चुपचाप उसी सोफे पर बैठकर सिगरेट पीने लगा।

अब वह सोच रहा था—इसी भाँति यदि वह भी सो गया होता, तो ? प्रात काल उठने पर कोई नौकर उसे देख लेता, तो ? एक अविवाहित तरुणी के शयन-कक्ष में किसी अपरिचित का सोना कुछ अर्थ रखता है।

तभी उसने सोचा—इस प्रकार का संकट मोल लेना ठीक नहीं। कहीं सेठ जी को पता चल गया तो वे गोली मार देंगे !

—परन्तु वह इस विवाह के पक्ष में नहीं है। ऐसी दशा में मैं क्या

हूँ ! अब तक मैं नारी के सम्पर्क से दूर था, किन्तु अब···अब यह म्पर्क तो जीवन का प्रश्न बन गया है।···सिंह के मुँह में जब खून लग ाता है तो वह सामने पड़े पशु को कभी छोड़ता है !

—तो अब इस प्रश्न का समाधान किये बिना गति नहीं है। कभी-कभी कानों में कुछ विचित्र स्वर गूंज उठते हैं। दो वयस्क कुमारियां मन्द स्वर में बात करती हुई फुसफुसा रही हैं—तो फिर कहती क्यों नहीं··· मैं नहीं, तू ही क्यों न कह दे कि जरा ठहर जाइये, मुझे श्रीमान् से कुछ कहना है।···मैं क्यों कहूँ ? तबियत तेरी है, मिलन का स्वाद तू चखना चाहती है और आगे मुझे कर रही है।

और।

—तो आज आप चले ही जायेंगे, रुकेंगे नहीं !···क्यों, ऐसी क्या बात है ?···बात कुछ नहीं, दीदी आपको पूछ रही थीं।···पूछ रही थीं ? क्या कह रही थीं ?···कह रही थीं कि अगर वे मेरे घर आने में संकोच करते हैं, तो फिर···

और।

ओः ! आप !···क्यों ? मुझे नहीं आना चाहिए था ?···नहीं-नहीं मेरा यह मतलब नहीं। बात यह है कि ऐसे समय—जब···वे···!··· ओः अच्छा तो मैं जाता हूँ। अब मैं तभी आऊँगा जब शर्मा जी यहाँ उपस्थित होंगे।—तो फिर कब ? मेरा मतलब है कि शाम को यही कोई सात बजे वे दफ्तर से लौटते हैं।···मगर मुझको तो साढ़े छै की गाड़ी पकड़नी है।···तो फिर···तो फिर···!

सोचता हूँ एक भोली नारी एकाएक परिणाम सोचे बिना जब समर्पिता बन बैठती है तो उसके सामने एक अकल्पित भविष्य होता है। लेकिन मेरा ऐसा विश्वास नहीं है। तन और मन का समर्पण परिणाम की कल्पना किये बिना कभी सम्भव नहीं होता। मिलन के बाद वह उससे विलग होने की कल्पना मात्र से विचलित हो उठती है। जन्म-भर के समस्त बन्धन अपना अस्तित्व शिथिल कर बैठते हैं; माता-पिता,

भाई-बहन, सखी-सहेली आदि मारे जाते अपना मोह-पाश शिथिल कर देते हैं। अब यह भी समर्पिता हो चुकी है। मेरा वियोग इसे भी चैन न लेने देगा।

सिगरेट समाप्ति पर आ गई। राकेश ने राखदानी में टुकड़े को बुझा दिया फिर उठ कर वह अमिता के समीप जाकर, क्षण भर अपलक नैत्रों से उसके अप्रतिम सौन्दर्य का पान करता रहा।

फिर उसके मस्तक पर हाथ रख कर उसे जगाने की चेष्टा की।

अमिता ने आँखें खोल दीं। अपनी बड़ी-बड़ी मादक निंदियारी आँखों से अत्यन्त स्नेह-दृष्टि से देखा। इस भाँति देखती रही, जैसे मुँह से न कह कर केवल सपनों की भाषा से कहना चाहती है।

राकेश के हृदय से निराशा का अवसाद मिट गया। वह उल्लसित स्वर में बोला—"तो अब मैं जा रहा हूँ।

अमिता ने सहज ढंग से उत्तर दिया—"जाओगे! लेकिन चाय तो पी लो।"

कथन के साथ ही वह उठ कर बैठ गई और एक अँगड़ाई लेकर अपने वस्त्रों को ठीक करने लगी।

तभी राकेश बोला—"चाय? क्या बात करती हो। रात्रि के ग्यारह बजने वाले हैं। तुम्हारे कमरे में मुझे देखकर लोगों की धारणा क्या होगी, इसका भी कुछ ध्यान है!"

अमिता के अधर कुटिल मुस्कान से खिल उठे। वह बोली—"तुम बड़े नादान हो राकेश। तुम्हारे इस भोलेपन ने ही तो मुझे ठग लिया है। आज तक सब मेरा आह्वान करते रहे और मैं तुम्हें। सच पूछो तो सदा मुझे ही निमन्त्रण प्राप्त होते रहे हैं, किन्तु आज तुम्हें मैंने आमन्त्रित किया है, यह तुम क्यों नहीं समझते?"

राकेश के मन प्राण पर विश्वास की एक गरिमा छा गई। वह बोला—"तुम्हारा संकेत न समझता तो मैं तुम्हारे सम्मुख इतना विवश कैसे बनता। प्रतिदान की आशा ने ही तो मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति

ागिन प्रज्वलित की थी। जब मुझे विश्वास हो गया कि तुम मुझसे च्चा प्रेम करती हो तो मैंने भी विवाह का प्रस्ताव कर दिया।"

राकेश के कथन को बीच में ही काट कर अमिता बोली—"फिर तुम वही राग अलापने लगे। तुम मुझे समझने की चेष्टा क्यों नहीं करते? मैं पूछती हूँ, प्रेम करने के लिए क्या विवाह आवश्यक है? हम दोनों एक दूसरे से प्रेम करते रहें, क्या इतना काफ़ी नहीं?"

राकेश बोला—"प्रेम की अन्तिम परिणति है मिलन।"

तपाक से वह बोली—"यही मेरा भी मत है।"

एकाएक राकेश को न जाने कैसा लगा। उसे प्रतीत हुआ कि यह नारी उस वर्ग के तरुणों से मिलती-जुलती है, जो भोली-भाली, निश्छल लड़कियों को प्रेम के भ्रम-जाल में फँसा कर उनका रस लूटने के पश्चात उन्हें तड़पने के लिए छोड़ देते हैं! उसे अपने ऊपर क्रोध हो आया।

वह बोला—"यह मिलन है या वासना की पूर्ति? सच पूछो तो यह पाप है।

अमिता फिर खिलखिला उठी। वह सोफ़े पर बैठ गई और बोली—"क्या बात कही है राकेश कि तबियत खुश हो गई।—यह वासना की तृप्ति है, अतः पाप है। और विवाह के बाद यही पुण्य हो जायगा! एक ही वस्तु समय के अन्तर से पाप होकर भी पुण्य हो जाती है! तुम पाप और पुण्य के झगड़े में उलझ कर बेकार का सरदर्द मत मोल लो राकेश।"

राकेश गम्भीरता से बोला—"मैं ऐसा कुछ नहीं सोचता। मैं तो तुमसे केवल एक प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। मैं सिर्फ़ इतना जानना चाहता हूँ कि तुम मुझ से प्रेम करती हो या नहीं।"

अमिता ने भी अवसरानुसार गम्भीर बन कर कहा—"करती हूँ! थोड़ा-बहुत नहीं, परिपूर्ण हृदय और सम्पूर्ण जीवन के लिए करती हूँ। और इस पावन घड़ी के बाद तो मन से, तन से, आत्मा से

अवर्णनीय स्तर-स्तर, पर्त-पर्त से सच पूछो, तो प्राणों से अधिक प्यार करती हूँ।"

राकेश ने झट से कहा—"मेरी समझ में नहीं आता कि फिर विवाह से इनकार क्यों ?"

अमिता यह समझ गई कि वह उन व्यक्तियों से भिन्न है जिनको आज तक वह अपने संकेतों से उठाती-बैठाती रही।

अतः उसने स्पष्ट करना ही उचित समझा। वह बोली—"प्रेम और विवाह दो पृथक्-पृथक् वस्तुएँ हैं। इनको अलग ही क्यों नहीं रहने देते राकेश ?"

एक निःश्वास के साथ राकेश ने अपने दोनों हाथ मस्तक से लगा लिए; फिर क्षण भर के बाद उसने कहा—"तो तुमने मुझे यहाँ बुलाया ही क्यों ? विवाह नहीं करना था तो प्रेम का नाटक यह क्यों रचा ? मेरे जीवन में विष घोल कर तुम्हें क्या प्राप्त हुआ ?"

अमिता बोली—"प्रत्येक वस्तु जिससे हम प्रेम करते हैं उससे विवाह तो नहीं कर लेते। मैं कल्पना भी नहीं कर सकती कि तुम इस बात को भी नहीं समझोगे ?"

राकेश के मुख पर पीड़ा एवं पश्चात्ताप के भाव उदित हो गये। वह उठकर खड़ा हो गया। बन्द द्वार की ओर संकेत करके बोला—"अच्छी बात है। मैं जाता हूँ जब तुम विवाह करने का निर्णय करना, तो मुझे बुला लेना।"

तत्काल अमिता ने कॉलबेल का बटन दबा दिया। बोली—"लगता है, इस समय तुम्हारी मनःस्थिति ठीक नहीं है। इस विषय पर हम लोग बाद में बातें करेंगे। आशा है कल शाम को क्लब में मिलोगे।"

तभी द्वार खुला और एक सेविका ने प्रवेश किया।

अमिता ने उसे आदेश दिया कि वह राकेश को बाहर पहुँचा दे।

राकेश ने एक बार घूमकर अमिता की ओर देखा और बिना कुछ कहे वह कमरे से बाहर निकल गया।

आगे-आगे चलती हुई वृद्ध सेविका ने मन्द स्वर में कहा—"साहब हमारा इनाम ?"

आत्मा को थोड़ा आघात-सा लगता प्रतीत हुआ।

राकेश की तत्कालिक बुद्धि बोली—यह है अमिता का वास्तविक स्वरूप ! इसको मालूम है कि वह यहां किस हेतु आया था। इनाम मांगने के ढंग से इस बात का भी पता चलता है कि यह इसके लिये प्रथम अवसर नहीं।

उसने प्रमुख द्वार पर पहुँचकर जेब में हाथ डाला और दस रुपये का नोट निकाल कर सेविका के हाथ में रख दिया।

राकेश को अपने घर लौटने की इच्छा ही न हुई। आज जीवन में प्रथम बार उसे किसी नारी का इस सीमा तक सान्निध्य प्राप्त हुआ था। एक ओर वह अपने मन में एक अभूतपूर्व आह्लाद का अनुभव कर रहा था, दूसरी ओर समाज की परम्परा के विरुद्ध किये गये आचरण का पश्चाताप सक्रिय होकर उसके मानस को उद्वेलित करने लगा था।

पाप करने के पूर्व आत्मा सदैव हमको चेतावनी देती है। राकेश को दुःख तो इसी बात का था कि परिणाम जानते हुए भी वह वासना के इतने प्रभाव में कैसे आ गया।

एक ओर उसका मन कहता था—तुमने पाप किया है। तुम जानते थे कि नारी से सम्पर्क स्थापित करने का अर्थ ही वासना के महल में प्रवेश करना है। इसी स्थल पर दूसरी ओर उसकी बुद्धि परिस्थिति को सम्हालते हुए कह उठी—तुम्हारा ध्येय केवल देह-रस की प्राप्ति न था। तुम तो विवाह का आश्वासन प्राप्त करने के अन्तर ही अमिता के शयन-कक्ष में गये थे। उसने विवाह करने से इनकार कर दिया तो इस में तुम्हारा क्या दोष ?

किन्तु उसकी आत्मा उसको दोष देती रही, बारम्बार वह एक धिक्कार जैसी प्रताड़ना का अनुभव करता रहा।

राकेश के पास उसकी अपनी आत्मा द्वारा लगाए गये लांछन का कोई उत्तर न था। उसकी आत्मा कहती थी—तुम को विवेक से काम लेना था। तुमको मालूम था कि विवाह के पूर्व, उस नारी से भी सम्बन्ध स्थापित करना पाप ही होता है जो कलान्तर में तुम्हारी पत्नी बनने वाली होती है।

अपने संस्कारगत विचारों में खोया हुआ राकेश सड़क के मध्य में आ पहुंचा था। एकाएक कार का जोरदार हार्न सुन कर उसकी तन्द्रा टूट गई और बचने की चेष्टा में ही वह कार की चपेट में आ गया। भाग्य की बात कि कार-चालक सतर्क था। अन्यथा समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाली दुर्घटनाओं में वृद्धि हो जाती। किन्तु यह स्थिति थोड़ी देर ही स्थिर रह सकी। उसके उपरान्त इस आकस्मिक आघात को वह सह न सका और गिरते ही अचेत हो गया।

ड्राइवर ने तुरन्त कार रोक दी। उसके साथ कार के स्वामी लाला हरचरणसिंह भी बाहर आ गये। राकेश को अचेत देख कर उन्होंने ड्राइवर की सहायता से उसे उठा कर कार की पिछली सीट पर लिटा दिया और ड्राइवर को आदेश दिया कि वह तुरन्त अस्पताल को चले।

अभी कार कुछ ही दूर गयी होगी कि हवा के झकोरों से राकेश की चेतना लौट आई। अपने को इस प्रकार कार में देख कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। पलकें उठा कर उसने एक पल के लिए सहयात्री को ध्यान से देखा और उसे पहचानने का प्रयास किया।

जब वह पहचानने में असमर्थ रहा तो उसने विस्मित वाणी में पूछा—"मैं इस कार मे आ कैसे गया ? कृपया बतलाइये आप कौन हैं और हम लोग कहां जा रहे हैं ?"

कथन के साथ ही उसने अनुभव किया कि उसकी दायीं कोहनी और दोनों घुटनों में दर्द हो रहा है। वह उठकर बैठ गया था।

साथ ही उसका ध्यान अपने सूट की ओर चला गया, जिस पर यत्र-तत्र धूल लग गई थी।

लाला हरचरणसिंह अपने पंजाबी लहजे में बोले—"तुम बीच सड़क पर थे। कार से टक्कर हो गई और तुम बेहोश हो गये। खैर, कोई बात नहीं, अभी अस्पताल में मरहम पट्टी करवा देते हैं। ज्यादा तकलीफ तो नहीं है बादशाहो?"

निश्चिन्तता से उसने कह दिया—"अरे नहीं, मामूली-सी खरोंच आ गयी है। अस्पताल चलने की ऐसी कोई आवश्यकता भी नहीं है। अच्छा हो आप मुझे यहीं उतार दें। मैं घर चला जाऊँगा।"

परन्तु लाला हरचरणसिंह ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर, थपथपाते हुए कहा—"दवा कर लेना जरूरी होता है। लापरवाही अच्छी नहीं होती बादशाहो।"

तभी कार अस्पताल के बड़े फाटक के अन्दर मुड़ गई।

प्राथमिक उपचार के बाद जब राकेश लाला जी के साथ कार के समीप पहुँचा, तो उसके मन में एक सहज संकोच उत्पन्न हो गया। उसे मन-ही-मन अपने ऊपर क्रोध आ रहा था, जिसके काहण यह काण्ड हुआ। उसका विचार था कि उसकी असावधानी के कारण ही यह दुर्घटना हुई जिसके फलस्वरूप केवल उसे ही नहीं, एक अन्य भद्र पुरुष को भी मुफ्त में परेशान होना पड़ा।

अतः उसने लाला जी से कह दिया—"मुझे बड़ा खेद हो रहा है कि मेरे कारण आपको कष्ट उठाना पड़ा। मैंने तो पहले ही कहा था कि कोई खास चोट नहीं लगी है।"

कार का दरवाजा खोलते हुए लाला जी बोले—"लेकिन सेंक जरूर लेना। अगर सूजन आ गयी तो सवेरे दर्द बढ़ जायगा। चलो, मैं तुमको घर पहुँचा दूँ बादशाहो।"

राकेश ने इस विषय को समाप्त करने की इच्छा से कहा—"अब आप और कष्ट न करें। मैं रिक्शे से चला जाऊँगा।"

कुछ हँसते हुए लालाजी बोले—"इस तरह काम नहीं चलेगा। सोचता हूँ मैं तुम्हारे पिताजी से क्षमा माँग कर लौटूं। तुम्हारे घर वाले भी तो परेशान होंगे बादशाहो।"

अब राकेश के मन में आया—आयी मुसीबत। ये तो हाथ धोकर पीछे पड़ गये।

लालाजी कथन के साथ ही कार में बैठ गये थे।

तब राकेश ने झट से कह दिया—"मैं यहाँ अकेला ही रहता हूँ। पिताजी तथा परिवार के अन्य सदस्य गाँव मे रहते हैं। इसलिए…।"

उसके अपूर्ण वाक्य को बीच मे काटकर लालाजी बोले—"तब तुम मेरे घर चलो। तुम्हारे घर में जब कोई है नही, तो तुम्हारी देख-भाल कौन करेगा? चलो तकल्लुफ़ की जरूरत नही है, बादशाहो।"

राकेश के मन में आया कि यह तो वही हुआ—गये नमाज बख्शाने और रोजे गले पड़े।

कुछ चलते हुए उसने कहा—"गाँव का एक नौकर रहता है। वह अँगीठी सुलगा देगा और मैं सेक लूँगा। आप चिन्ता न करें।"

किन्तु लालाजी न माने। उन्होंने उसका हाथ पकड़ कर उसे कुछ घसीटते हुए कहा—"तुम बच्चे हो। अभी कुछ नही समझ सकोगे। लेकिन मैं अपने फर्ज को भूल जाऊं, ऐसा कैसे हो सकता है। तुमको चलना ही पड़ेगा। फिर अब तो हम लोगो की जान-पहिचान भी हो गयी है। साथ चलते-चलते रास्ते मे जो मुलाकातें हो जाती हैं वे कभी-कभी गहरी दोस्ती में बदल जाती हैं बादशाहो।"

राकेश को एकाएक कुछ न सूझा तो उसने टालने की इच्छा से कह दिया—"इस समय तो आप क्षमा करें। मैं दिन मे किसी समय आपकी सेवा में आ जाऊँगा।"

लालाजी कुछ गम्भीर हो गये और बोले—"अभी तो तुम मेरा नाम तक नहीं जानते, फिर मकान कैसे मालूम होगा? मुझसे बहानेबाजी नही चलेगी बादशाहो।"

"मेरा नाम वैसे तो राकेश मिश्र है, लेकिन आप मुझे 'बादशाहो' ही कह सकते हैं !"

लालाजी ने बगल में बैठे हुए राकेश के हाथ को अपने हाथों में लेकर दबा दिया और कहा—"मालूम होता है तुमको बुरा लग गया। क्या करूं, अपनी ऐसी कुछ आदत ही पड़ गयी है। वैसे मैंने जानबूझ कर ऐसा नहीं कहा था। पर अब से मैं तुमको तुम्हारे नाम से पुकारूंगा। सो अब माफ़ कर दो बादशाहो।"

वर्षों का अभ्यास एक प्रकार से मनुष्य की प्रकृति का एक अंग बन जाता है। लाख चेष्टा और प्रयत्न करने पर भी मनुष्य उसे नहीं छोड़ पाता।

उपर्युक्त वाक्य में भी लाला हरचरण ने अन्त में जब अपने तकिया-कलाम का उच्चारण कर दिया तो राकेश अपने मन का समस्त विषाद भूल कर प्रसन्नता से हँस पड़ा।

उसे इस प्रकार से हँसते देखकर लालाजी को तुरन्त अपनी दुर्बलता का स्मरण हो आया। वे समझ गये, हो सकता है, उन्होंने फिर अपना तकिया-कलाम अवश्य ही वाक्य के अन्त में जोड़ दिया है।

अतः पश्चाताप् करने की मुद्रा में उन्होंने हाथ उठाकर दोनों कान पकड़ लिये। बोले—"च्-च् ! फिर भूल हो गयी। वैसे मैं वादा करता हूँ कि धीरे-धीरे मैं अपनी इस आदत को छोड़ दूंगा। लेकिन भई, नाम तो अधूरा परिचय होता है। तुम करते क्या हो बादशाहो ?"

राकेश फिर मुस्कराने लगा और लालाजी ने तुरन्त ही उसकी उस मुस्कान का अर्थ समझ लिया तथा वार्तालाप को भंग न होने देने की दृष्टि से उन्होंने झट् अपनी जीभ दाँतों के बीच में दबा कर पुनः अपने कान पकड़ लिये।

इस समय तक राकेश अपनी स्वाभाविक मनःस्थिति में आ चुका था। उसे स्वयं ही लालाजी के विचित्र व्यक्तित्व में एक अद्भुत आक-

र्पण का भान हो रहा था ।

विनम्रता से वह बोला—"क्या मैं और क्या मेरा परिचय ! नाम तो बता ही चुका हूँ रहा काम करने का प्रश्न, तो यों समझ लीजिये कि मैं एक बेकार आदमी हूँ । वैसे बेकार भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि और कुछ न सही पर बाप-दादों की कमाई को ठिकाने तो लगा ही रहा हूँ !"

लालाजी बुजुर्गाने ढंग से बोले—"यह तो कुछ अच्छी बात नहीं है । कुछ-न-कुछ तो अवश्य करना चाहिये । वैसे तुम्हारे पिताजी क्या करते हैं बादशाहो ?"

राकेश ने वार्तालाप में रस लेते हुए कह दिया—"वे भी कुछ नहीं करते । हाँ, दिन में एक बार घोड़े पर चढ़ कर अपने खेतों का चक्कर अवश्य लगा आते हैं ।"

लालाजी बोले—"तो यों कहो कि खेती होती [illegible]रे यहाँ । पुराने जमींदार मालूम होते हो बादशाहो ।"

तो उसके मन में अमिता का चित्र उभर आया। किन्तु लालाजी के साथ उसकी जो वार्ता हुई, उसकी कुछ प्रतिक्रिया भी उस पर हुये बिना न रह सकी। विवाह और प्रेम की समस्या के साथ-साथ जीवन-यापन का प्रश्न भी अपने आप में निहित अनेक प्रकार के संकटों और व्यवधानों के साथ उठ खड़ा हुआ। परिणाम यह हुआ कि वह अपने भीतर एक नयी उलझन का अनुभव करने लगा।

सोफ़े पर बैठते समय उसके घुटने में तीव्र पीड़ा हुई तो वह समझा कि यह पैर सूज जाने का ही प्रभाव है। एक बार मन में आया कि अच्छा हुआ जो लालाजी उसे बलपूर्वक ले आये, अन्यथा घर जाने पर तो वह प्रातः होते-न-होते एक प्रकार से अपंग ही बन गया होता। इसके अतिरिक्त वहाँ का एकान्त तो और भी प्राण पीड़क बन जाता। एक तो रात्रि में नींद नहीं आती, दूसरे अमिता की स्मृति आ-आ कर सताने लगती है। और यहाँ कम-से-कम लालाजी के साहचर्य में समय तो कट ही जायगा।

तभी उसे ध्यान आया—अमिता ने कल संध्या समय क्लब में भेंट करने के लिये कहा है।

अब वह सोच रहा था—आने वाले कल में ही उसके भविष्य का समस्त सुख छिपा है।

एक प्रकार से राकेश को विश्वास था कि अमिता उससे विवाह अवश्य करेगी। क्योंकि आधुनिका होने पर भी वह भारतीय सभ्यता में पली है। और उसके लिये परम्परागत संस्कारों को छोड़ना दुष्कर होगा। यों तो अमिता का कथन उसे याद था—भारतीय नारी केवल एक व्यक्ति से प्रेम करती है और वह होता है उसका पति।

अचानक लालाजी का कठोर स्वर सुन कर उसके विचारों की माला सम्पूर्ण होने के पूर्व ही टूट गई।

लालाजी उच्च स्वर में गरजते हुये आदेश दे रहे थे—"खाना बाद में खाया जायगा। पहले एक अँगीठी में कुछ कोयले सुलगा लाओ

साथ में रुई या कोई कपड़ा, जिससे सेंका जा सके।"

राकेश ने लक्ष्य किया कि बूढ़ा नौकर उत्तर में मुँह से कुछ न कह, केवल सर हिला कर, आदेश का पालन करने के लिये कमरे के बाहर चला गया।

उच्च स्वर एवं कठोर वाणी के कारण सम्भवतः लालाजी ने उसके मुख पर छायी हुई भावनाओं की घटा से उसके मन के अन्दर उत्पन्न हुई प्रतिक्रिया को भी पढ़ लिया। वे बोले—"मैं देखता हूँ, तुम हैरान हो रहे हो। अरे मैंने इसलिये चिल्लाकर कहा कि यह बलवन्त गूंगा और बहरा है। वैसे मैं हर एक से चीखकर नहीं बोलता, बादशाहो।"

शंका-समाधान के पश्चात् लालाजी ने राकेश को बोलने का अवसर न देकर झट से एक प्रश्न ठोंक दिया—"अगर खाना खाये देर हुई हो, तो नाश्ता मँगाया जाय। वैसे मैंने अभी खाना नहीं खाया है। यों भी मैं देर से ही खाता हूँ। जैसा तुम कहो, वैसा इन्तजाम किया जाय। आज तुम मेरे मेहमान हो। और मेरी मान्यता है कि खातिरदारी आने वाले की इच्छानुसार होनी चाहिये। क्या ख्याल है तुम्हारा, बादशाहो?"

राकेश ने कुछ संकोच का अनुभव किया। उसके मन में आया कि यह व्यक्ति अत्यन्त निश्छल और सरल प्रकृति का है। आत्मीयता एवं शिष्टाचार तो जैसे इसके रक्त में घुला हुआ है। तभी उसे ध्यान आया कि बाह्य आवरण के द्वारा मनुष्य को पहचानना कठिन है। फिर यह तो प्रथम भेंट है।

अब वह अपनी स्थिति से उसकी तुलना करने लगा। उसकी बुद्धि ने कहा—वह स्वयं भी बाह्याडम्बर से अपनी वास्तविक स्थिति छिपाने में सफल हो रहा है।

फिर उसे अमिता का स्मरण आ गया। उसने सोचा—वह उसको भी समझने में भूल कर बैठा है।

तभी लालाजी बोल पड़े—"मालूम होता है, तुम तकल्लुफ में पड़

गये हो। चलो, पहले एक प्याला चाय हो जाय। फिर बाद में खाना भी चला जायगा। इसे तुम अपना ही घर समझो, और आराम से बैठो, बादशाहो।"

लालाजी के उपर्युक्त कथन ने राकेश के पीड़ित मर्म को छू दिया। सहसा उसके नेत्र आर्द्र हो उठे। निराश मन के निविड़ एकान्त में आशा की एक किरण कौंध गयी। उसे प्रतीत हुआ कि उसकी समस्त समस्याओं का समाधान लाला जी के द्वारा हो जायेगा।

इसी चिन्तन के बीच उसने कह दिया—"आप ठहरे उमर में बड़े, मैं तो एक लड़के के बराबर हूँ। इसलिए आपका आग्रह टाला नहीं जा सकता। चाय तो चल ही जायगी।"

लालाजी के मोटे-मोटे होठों पर मुसकान थिरक उठी। वे बोले—"बस, अपने को ऐसे ही आदमी पसन्द हैं जो मुझे अपना समझें। पराया समझने वाले तो सैंकड़ों मिलते हैं, बादशाहो!"

राकेश तपाक से बोल उठा—"हाँ, इसका कुछ अनुभव तो मुझे भी है। इतनी थोड़ी-सी उमर में ही मैंने कई उतार-चढ़ाव देखे हैं।"

कथन के साथ ही उसके कण्ठ से एक निःश्वास निकला और वातावरण में लीन हो गया।

व्यवहार कुशल लाला हरचरणसिंह से उसकी मनोदशा छिपी न रही। वे समझ गये कि यह व्यक्ति किसी चिन्ता से पीड़ित जान पड़ता है।

इसके पूर्व कि वे कुछ उत्तर देते, दहकते हुए अंगारों से भरी अँगीठी लिये बूढ़ा बलवन्त परदा हटाते हुए कमरे में आ पहुँचा। और उसने पहले राकेश के पैर के समीप ही अँगीठी रख दी, फिर उसने अपने कन्धे से उतारकर एक धुली लुंगी उसकी ओर बढ़ा दी।

लुंगी देखते राकेश का ध्यान अपने सूट की ओर चला गया। उसके मन में आया—इसके अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा सूट मेरे पास नहीं है। इसकी सुरक्षा तो करनी ही होगी। सड़क की धूल लग गयी है,

साफ़ हो जायेगी। वास्तव में यह बलवन्त बड़ा बुद्धिमान और व्यव-
ार कुशल है अन्यथा अगर इसकी कीज़ खराब हो जाती तो क्या पहन
र वह क्लब जाता ? एक समस्या उत्पन्न हो जाती ?

उसने कोट उतारना प्रारम्भ किया तो उसकी दृष्टि अनायास ही ऊपर उठ गयी। उसने लक्ष्य किया कि बलवन्त लालाजी से कुछ सांकेतिक भाषा में वार्ता कर रहा है और लाला जी का मुख चिन्ता एवं व्यथा की घनघोर घटा से आवृत हो गया है।

तभी लाला जी बोल पड़े—"तुम बैठो, मैं अभी आता हूँ, बादशाहो।"

कथन के साथ ही वे उठकर चले गये। अब राकेश के मन में आश्चर्य के साथ सन्देह का भी समन्वय हो गया।

एक बार जिसके मन में सन्देह उत्पन्न हो जाता है, उसे प्रत्येक स्थल पर, प्रत्येक गति में और प्रत्येक कृत्य के अन्दर रहस्य-ही-रहस्य दृष्टिगोचर होता है। प्रायः अपनी निजी भावनाओं के अनुरूप ही वस्तुस्थिति का अर्थ समझ में आता है।

राकेश के मन में आया कि अगर बलवन्त बोल सकता, तो उसके माध्यम से लाला जी के रहस्य का पता लगाया जा सकता था।

पैर के घुटनों में सेंक से कुछ लाभ हुआ तो उसने अनुभव किया कि अब पीड़ा कम हो गयी। इसी संदर्भ में उसे अपने गाँव के मास्टर साहब का ध्यान हो आया जिनका कथन था, हमें सदैव सतर्क रहना चाहिये। प्रत्येक समय और परिस्थिति में स्थिर चित्त और शान्त रह कर वस्तुस्थिति का लाभ उठाने का प्रयास करना हमारा धर्म है।

उसने निश्चय किया कि वह भी इस नयी मित्रता से लाभ उठाने का भरसक प्रयत्न करेगा। वह इस चिन्तन में इतना लिप्त था कि उसे

समय का ध्यान ही न रहा।

इतने में एकाएक नारी कंठ का एक चीत्कार वायुमण्डल में मे गूँज गया। राकेश चौंक उठा और तपाक् से उठकर खड़ा हो गया।

इसके पहले कि वह अपनी जिज्ञासा शान्त कर पाता, उसने देखा कि गूँगा-बहरा बलवन्त उठकर द्वार की ओर भाग रहा है।

उसे इस प्रकार भागते देख कर राकेश के मन में प्रश्न उठा—यह वास्तव में बहरा है, या इसमें शब्द-विशेष को सुनने की क्षमता भी है।

यह अतिथि की मर्यादा का बोध त्याग कर अनजाने ही बलवन्त का अनुसरण करने के लिए उठकर खड़ा हो गया। अभी वह द्वार के समीप भी न पहुँचा था कि उसकी दृष्टि ड्राइंग रूम के फ़र्श पर बिछी हुई क़ालीन से उठते धुएँ पर जा पड़ी। बलवन्त के एकाएक उठकर भागने से अँगीठी उलट गयी थी। पर यह देख कर भी वह रुका नहीं, वरन् बलवन्त के पीछे-पीछे कमरे से बाहर निकल कर उसके पीछे-पीछे गलियारा, दालान और सीढ़ी पार कर के ऊपर जा पहुँचा।

एक बन्द दरवाज़े के सम्मुख पहुँच कर बलवन्त एक पल के लिये रुका। फिर उसने विक्षिप्त की भाँति दोनों हाथों से उस बन्द द्वार पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। तब राकेश भी संज्ञाहीन, यंत्रचालित प्लास्टिक के खिलौने की भाँति, उसके पीछे खड़ा हो गया।

इतने पर भी द्वार न खुला और बलवन्त धीरे-धीरे बन्द द्वार से सरक कर फ़र्श पर गिर पड़ा। उसे इस प्रकार गिरता देखकर राकेश की तात्कालिक बुद्धि ने उसे बता दिया कि यह व्यक्ति भावना के उद्रेक और अपनी विवशता के कारण संज्ञाहीन हो गया है।

राकेश ने तुरन्त आगे बढ़कर अचेत हो रहे बलवन्त को सम्हालने की चेष्टा की। तभी एकाएक द्वार खुल गया और लाला जी बाहर निकल आये। राकेश कुछ इस तरह से बैठा था कि कमरे का रहस्य उसकी दृष्टि से छिप न सका। उसने देख लिया कि सामने की [illegible] सहारे एक पलंग बिछा है और दुग्ध-धवल शैया पर कोई सो

जिसके सिरहाने एक युवती बैठी हुई है। वह उसका मुख न देख सका, क्योंकि राकेश की दृष्टि की दिशा में उसकी पीठ होती थी।

तभी चौंकते हुए लाला जी बोले—"तुम यहाँ कैसे आ गये? इसे पड़ा रहने दो। अभी थोड़ी देर में होश आ जायगा। चलो, नीचे चलें। यह तो रोज की पिट्टन है, बादशाहो।"

कथन के साथ ही लाला जी राकेश का हाथ पकड़ कर उसे साथ ले चले।

फिर सीढ़ी से उतरते हुए लाला जी एकाएक रुक गये और पीछे आते हुए राकेश की ओर घूमकर बोले—"बस यही मेरे जीवन का अभिशाप है। पर इसे कोई नहीं जानता। मैं आशा करता हूँ कि तुम इसे गुप्त रक्खोगे। तुम मेरे मित्र हो और मित्र की रक्षा करना, उसकी मान-मर्यादा पर आँच न आने देना, तुम्हारा धर्म होना चाहिये। मानवता के नाते मैं तुमसे हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ। मेरे ख्याल से इसी में तुम्हारी भलाई भी है। अगर बलवन्त को पता चल गया कि तुम उसके पीछे ऊपर तक चले गये थे और इस रहस्य के सम्बन्ध में तुम्हें कुछ मालूम है, तो वह एक हिंस्र पशु की भाँति तुम्हारा खून कर देगा!"

राकेश ने देखा कि यह प्रथम अवसर है, जब लाला जी ने वाक्य के अन्त में 'बादशाओ' का प्रयोग नहीं किया। वह समझ गया कि लाला जी उत्तेजनावश अपने तकिया-कलाम को भूल गये हैं।

अब उसके मन में लाला जी के स्वर और कथित वाक्य के अर्थ को लेकर एक भयंकर प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गयी। यों साधारण परिस्थिति में उसने इस घटना की ओर अधिक ध्यान न दिया होता। किन्तु लाला जी के कथन में उसे चुनौती की गन्ध जान पड़ी। उसका अहम् जाग उठा और उसे मैदान में डट जाने के लिये विवश करने लगा।

राकेश ने अपने असंतुलित विचारों का विरोध कर संयम के साथ सधे हुए स्वर में कहा—"लगता है लाला जी, आप मुझे धमकी दे

रहे हैं!"

लाला हरचरणसिंह के जीवन में यह प्रथम अवसर था, जब कोई व्यक्ति उनके सम्मुख इस प्रकार खड़े होकर प्रत्युत्तर की धृष्टता कर रहा था। उन्हें इस बात का गर्व था कि उन्होंने सदैव अपनी वाक्-पटुता से ही सबको परास्त किया है। इस कारण राकेश का प्रश्न सुन कर वे किंचित् घबरा गये। एकाएक उनकी समझ में न आया कि वे क्या उत्तर दें। उन्हें कुछ ऐसा भी भान हुआ कि उनका प्रतिद्वन्द्वी सामान्य व्यक्ति नहीं है। उसमें प्रतिभा तो है ही, परिस्थिति का सामना करने की क्षमता भी है। उन्हें इस बात का भी बोध हुआ कि यह व्यवहार-कुशल होने के साथ वाक्पटु भी है।

अपने ही बनाये जाल में स्वतः फँस जाने की आशंका से वे सजग हो गये। फिर सतर्कता के साथ वे पुनः अपनी स्वाभाविक मुद्रा में आ गये। साथ ही अपने कथन की गम्भीरता को क्षीण करने के लिये मन्द स्वर में हँस पड़े और बोले—"तुम मुझे गलत समझ रहे हो राकेश। मैंने तो वास्तव में तुम्हें इस बदतमीज का स्वभाव बताया था। वश रहते वह किसी भी आदमी को दूसरी मंजिल पर नहीं जाने देता। इसीलिए तो इस घर में उसके अलावा कोई दूसरा नौकर नहीं टिकता। वास्तव में मैंने इसीलिए तुमसे यह बात कही थी जिससे तुम उसके सामने तो कम-से-कम ऐसी कुछ बात न कहो, जिससे उसे शक हो जाय। किसी प्रकार की धमकी देने का इरादा मेरा कतई न था। बुरा लगा हो तो मैं माफ़ी माँग लेता हूँ बरखुरदार!"

हालाँकि राकेश लाला जी का वास्तविक अभिप्राय समझ गया था। किन्तु फिर तत्कालीन परिस्थिति देख कर उसने इस चर्चा को अधिक चलाना उचित न समझा। उसने सोचा इस समय अपनी जिज्ञासा को शान्त रखने में ही भलाई है, विशेषतया इस स्थिति में जब कि हमें सर्पों से तेल निकालना है! तत्काल उसके आनन पर एक कुटिल मुस्कान की छाया मुद्रित हो उठी।

अतः वह बोला—"आप ठीक कहते हैं लाला जी। यों भी मैं एक शान्तिप्रिय व्यक्ति हूँ। दूसरों के मामले में टाँग अड़ाने की मेरी आदत भी नहीं है।"

परस्पर का तनाव अब शान्त हो चुका था। दोनों जब नीचे ड्राइंग रूम में पहुँचे तो कमरे में धुआँ भरा हुआ था और कालीन काफ़ी मात्रा में जल चुका था।

राकेश ने आगे बढ़कर लाला जी से कहा—"अरे अभी अनर्थ हो जाता! आइये, जल्दी से इस कालीन को उठाकर बाहर कर लें।"

अब कालीन का एक छोर लाला ने पकड़ा और दूसरा राकेश ने। कालीन बाहर लॉन पर फेंक कर, उसने उचित अवसर देख लाला जी पर एक तीव्र प्रहार कर दिया। बोला—"अगर थोड़ी देर और हम लोग न आते तो निश्चय ही भयानक अग्निकाण्ड हो जाता! बड़ी कुशल हुई वर्ना आपका यह रहस्य खुले बिना न रहता। उस दशा में आप किससे कहते कि दूसरी मंजिल पर जाना वर्जित है, अग्निशामक दल से या उन सैकड़ों तमाशबीनों से, जो अग्नि की ध्वंसलीला देखने के लिए बहुधा घटनास्थल पर एकत्र हो जाते हैं।"

लाला जी के मन में स्वतः ही कुछ ऐसे विचार उठ रहे थे। राकेश के कथन के अन्दर छिपे हुए व्यंग की ओर उन्होंने ध्यान न दिया, अपितु उनके मन में उस के प्रति कृतज्ञता के भावों ने जन्म ले लिया। एक प्रकार से उन्हें लगा कि इस समय तो इसी व्यक्ति के कारण उनके रहस्य का पर्दा ढका रह सका है।

भावना के उद्रेक में उन्होंने आगे बढ़कर राकेश को अपने कंठ से लगा लिया। अब अश्रु विगलित स्वर में बोले—"जीते रहो बेटा। तुमने वास्तव में मुझे मरने से बचा लिया। अगर मेरा यह राज खुल कर सड़कों पर फैल जाता, तो मैं किसी को मुँह दिखाने के काबिल न रहता। अब मैं कल ही वकील साहब को बुला कर नयी वसीयत तैयार कराऊँगा। तुम देखोगे मैं अहसान फरामोश नहीं हूँ, बादशाहो।"

अब राकेश के मन में आया—तो क्या वास्तव में उसने लाला जी पर विजय प्राप्त कर ली !

परन्तु वसीयत की बात सुन कर उसने सोचा—अगर लाला जी अपने माध्यम से उसका विवाह अमिता के साथ करा दें, तो वह वसीयत की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेयस्कर होगा।

परन्तु फिर नम्रता और शिष्टाचार के नाते उसने कह दिया—"मैंने आपका ऐसा कोई उपकार नहीं किया लाला जी। यह तो मेरा कर्तव्य था। रहा वसीयत का प्रश्न, सो आप यों समझ लीजिये कि उपकार सदा निःस्वार्थ और निःशुल्क होता है। वैसे भी मेरी प्रार्थना है कि किसी दूसरे का अधिकार छीन कर, उसकी निधि मेरी झोली में न डालें। मुझे तो आपका आशीर्वाद ही चाहिये।"

अब लाला जी बोले—"तुम सचमुच एक नेकदिल आदमी हो। वैसे भी जो कुछ मुझे करना है, अपने मुँह से अभी कहना नहीं चाहिये था। अच्छा चलो, अन्दर ही बैठें। मेरे तो दिल की धड़कन बढ़ गयी बादशाही।"

लाला जी ने सम्पूर्ण रात्रि राकेश से गप्पें मारने में ही बिता दी। दिन भर के थके-मांदे राकेश को पहले तो अनुभव नहीं हुआ, किन्तु ज्यों-ज्यों रात्रि का अन्तिम प्रहर बीतने लगा तो उसके मन में बारम्बार अमिता के निकटतम सान्निध्य में बिताये हुए क्षणों में जीवन-सौरभ की प्रथम अनुभूति के सुखद प्रकरण और स्फुरण स्पन्दन और रस-बोध स्मरण आते रहे। वास्तविकता तो यह थी कि उसका शरीर ही यहाँ विद्यमान था, हृदय तो अब भी कल्पना-कुन्ज में अमिता की देहलता का रसास्वादन कर रहा था। उस समय उसकी मानसिक स्थिति ऐसी न थी कि वह लाला जी से वाक्युद्ध कर सकता। अतः अपनी मानसिक विहार शृंखला को तोड़े बिना ऊपरी मन से, उनकी बातें सुनने का बहाना स्थिर बनाये रखने के लिए बीच-बीच केवल हुँकारी भरता रहा।

उधर लाला जी के लिए, उसका व्यवहार, एक आदर्श श्रोता की भाँति था। वे खूब रस ले-लेकर बोल रहे थे।

अन्त में एक ऐसी स्थिति भी आ गयी, जब प्रातः का हलका धुँधला प्रकाश, पूर्व की खिड़की के शीशों से छन कर, कमरे में चुपचाप आ घुसा और सोफ़े पर लेटा हुआ राकेश अपनी इच्छा के विरुद्ध अनजाने ही सो गया।

राकेश का स्वयं अपना इतिहास भी कम रहस्यमय न था। अतीत के असीम गह्वर में छिपे हुए व्यतीत को जान सकने की क्षमता नये लोगों में नहीं होती। नयी जगह और नये लोगों के बीच में आकर कोई भी व्यक्ति सत्य और वास्तविकता पर पर्दा डाल कर नाटक के पात्रों की भाँति वेशभूषा बदल कर कुछ-का-कुछ बन सकता है।

इस तथ्य को जीवन में सफलता प्राप्त करने का मूल मंत्र मानने वाला राकेश जब लंगड़ाते-लंगड़ाते हाईस्कूल हुआ तो उसने अपना गाँव और जानी-पहचानी जगह से दूर जाकर अपना नया संसार बसाने का निश्चय किया।

वैसे तो गाँव तथा क़स्बे में, जहाँ कहीं पढ़ने जाता था, कभी उसे किसी वस्तु का अभाव न रहता था। किन्तु जो वस्तु उसे सबसे अधिक आत्म-पीड़क और अपमानजनक मालूम होती थी, वह थी उसके पिता की जीविका। उसके वयोवृद्ध पिता पण्डित जगतविहारी मिश्र सीधे-सादे, निश्छल प्रकृति के, कुछ-कुछ रूढ़िवादी व्यक्ति थे। माता के प्रभाव से बचपन में ही उनका झुकाव भगवान के पूजा-पाठ की ओर विशेष था। और बड़े होने पर तो उसी को उन्होंने अपनी जीविका का साधन भी बना लिया था जब तक उनकी पत्नी जीवित रहीं; तभी तक वे घर में आते थे। किन्तु जब राकेश चौदह वर्ष का हुआ तो उसकी

माता का देहान्त हो गया। और बस, उसी दिन से पण्डित बलन बिहारी ने मन्दिर में ही डेरा डाल लिया। मन्दिर के चढ़ावे आदि की धार से ही अब वे अपना और राकेश का भरण-पोषण करते थे। उन्होंने कभी राकेश की रुचियों के सम्बन्ध में कुछ नहीं सोचा। सामर्थ्य के अनुसार उन्होंने उसकी प्रत्येक इच्छा की सम्पूर्ति की और कभी किसी वस्तु का अभाव उसे नहीं प्रतीत होने दिया।

इतने पर भी उनकी अपनी सीमा थी। राकेश के विचारानुसार सामान्य रूप से कोई अभाव न होना एक बात थी; पर सुविधाओं तथा क्षमताओं की प्रचुरता दूसरी।

अपने स्कूली दिनों में राकेश जब किसी धनी-विद्यार्थी की समता न कर पाता, तो उसके मन में बड़ा क्षोभ और दुःख होता।

एक दिन जब वह धनी वर्ग के लड़कों का अनुकरण करने की धुन में टेरीलीन का सूट पहन कर स्कूल पहुँचा; तो लड़कों ने उसे घेर लिया। प्रशंसा के बहाने वे भाँति-भाँति के व्यंग करने लगे। उसके मन को ठेस तो लगी, किन्तु अपने ज्ञान के अनुसार उसमें उसने अपमान का अनुभव नहीं किया। लेकिन जब स्कूल के संस्थापक के सुपुत्र ने कह दिया— पुजारी जी ने चढ़ावे में पाया होगा, तो उसका हृदय चीत्कार कर उठा। वैसे भी उसे अपने पिता का धनी न होना बहुत अखरता था। इस बात का उसे पूर्ण रूप से ज्ञान था कि आज की सामाजिक व्यवस्था में पुजारी वर्ग को कोई उच्च स्थान प्राप्त नहीं है। इस बात को लेकर उसने कई बार अपने पिता से चर्चा भी की थी। अतः पुजारी का पुत्र कह कर जब उसके सहपाठियों ने उसका उपहास किया, तो उसे अपने पिता का स्मरण हो आया। उनका कहना था कि कोई व्यक्ति दरिद्र या निर्धन नहीं होता, यह सब तो उसकी परिस्थितियाँ बना देती हैं।

और बस, उसी दिन राकेश के मन में आया—मैं परिस्थिति और

छोड़ूंगा ।

अन्त में एक दिन वह अपने पिता को समझा-बुझा कर कानपुर आ पहुँचा, जहाँ उसने चेष्टा करके एक मिल में नौकरी प्राप्त कर ली तथा जान-बूझकर, टीमटाम व दिखावे का आडम्बरपूर्ण जीवन प्रारम्भ कर दिया। वह अपने वेतन में से एक पैसा भी अपने पिता को भेजना दूर रहा वरन् उन्हीं से सौ-पचास रुपये प्रतिमास नियमित रूप से मँगवा लेता था ।

उसने धीरे-धीरे समाज के धनीवर्ग में उठना-बैठना प्रारम्भ कर दिया। अपने खान-पान में वह आवश्यकता से अधिक एक पैसा भी नहीं व्यय करता था। मिल में काम पर जाने के लायक कपड़ों के अतिरिक्त वह बड़ी कठिनाई से दो सूट सिला सका था। किन्तु उसने अपने मिल के हेड-क्लर्क के घर पर जाकर अंग्रेजी बोलने का अभ्यास कर लिया और उन्हीं से उसने साथ-साथ सभ्य-समाज के शिष्टाचार, रहन-सहन, उठने-बैठने, खाने-पीने आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त किया।

फिर जब उसे विश्वास हो गया कि उसके किसी व्यवहार में कहीं भी कोई त्रुटि नहीं रह गयी है, तब वह एक दिन अपने गुरु हेड-क्लर्क के आदेशानुसार क्लब में जाकर उसका सदस्य बन गया।

अब उसने दो प्रकार का जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया। दिन में तो वह एक साधारण क्लर्क का जीवन व्यतीत करता, पर संध्या से अर्धरात्रि तक धनिक वर्ग के एक चिरंजीव का !

उसके असाधारण व्यक्तित्व ने बहुतेरे व्यक्तियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। पुरुषों के अतिरिक्त उच्छृंखल एवं स्वच्छन्द ललनाएँ उसकी रूप-सज्जा के भ्रम में पड़ कर, उसके समक्ष प्रणयाभिलाषिणी बन गयीं। किन्तु राकेश उस वर्ग के मनोविज्ञान से अपरिचित था, अतएव वह उनके संकेतों को समझ न सका। मन में रूप-यौवन के उपभोग की लिप्सा होते हुए भी वह उस नारी-वृन्द का खिलौना बनने से बच गया, जिसको आधुनिका कहते हैं और अनेक प्रणयी होना जिनके

अन्तर्गत आज का फ़ैशन समझा जाता है। उसका मन तो बहुत उत्साहित रहता था, किन्तु उसके अन्दर भरी हुई सभ्यता व संस्कृति का अंकुश बहकने के पहले ही उसके पग रोक लेता।

दिन बीत रहे थे। राकेश के मन में शान्ति न थी। हर समय उसे एक दुश्चिन्ता बनी रहती। वह अनुभव कर रहा था कि दूसरों को भुलावा देना आसान है, किन्तु मनुष्य अपने को कैसे बहका सकता है। परदे के पीछे छिपा हुआ कठोर सत्य अपने वास्तविक रूप में उसके समक्ष चौबीसों घंटे निरावरण खड़ा अट्टहास करता रहता था। वह अपनी वास्तविक स्थिति को कभी भूल नहीं पाता था। वह जानता था कि यह सब दिखावा क्षणिक है। इस स्थिति से ऊपर उठने और उसे स्थायित्व प्रदान का साधन ढूंढने और जुटाने में उसका प्रत्येक क्षण व्यतीत होता था।

तभी उसके जीवन में अमिता ने प्रवेश किया। ग्रीष्मावकाश के उपरान्त वह कश्मीर से वापस आयी थी। जैसे ही उसके पड़ोस में रहने वाली फिरोज़ा से उसकी भेंट हुई, वैसे ही छुट्टियों की चर्चा के साथ-साथ आनन्दात्मक अनुभवों की गठरी ही जैसे खुल गयी।

अमिता बोली—"भई मजा आ गया। काश्मीर वास्तव में पृथ्वी का स्वर्ग है। मुझे तो ऐसा लगता है कि किसी नारी ने ही अपने अनुभव के आधार पर यह बात कही होगी। काश तुम चलती तो तुम्हें पता चलता कि असली सुख कैसा होता है!"

फिरोज़ा के नेत्रों में एक चमक-सी उत्पन्न हो गई। एक लालसा के साथ वह बोली—"तब तो वहाँ तेरे बड़े ठाठ रहे होंगे!"

अमिता बोली—"यों कोई खास ठाठ तो क्या रहे, लेकिन यहाँ से तो सब अच्छा-ही-अच्छा था। यहाँ तो वही ढाक के तीन पात हैं—पर

ुं जीवन-रसना का स्वाद ही बदल गया, जबकि पिताजी साथ थे। र इस तरह तू नहीं समझेगी। वहाँ हर प्रान्त के, देश-विदेश के, काले, ोरे, नाटे, लम्बे, हर प्रकार के नमूने देखने को मिलते थे।"

फिरोजा बोली—"बस रहने दे! मेरे ऊपर कुछ दया कर। मेरा तो इतना सुनकर ही बदन ऐंठा आ रहा है!"

कथन के साथ ही वह अमिता से लिपट गई। अमिता ने भी उसे आलिंगन में भर लिया। दोनों कुछ क्षण तक युग-युग के प्यासे प्रेमियों की भाँति एक-दूसरे को प्यार करती रहीं।

फिर अमिता ने उसे अलग करके कहा—"वहाँ तू होती तो बड़ा आनन्द रहता।" कहती-कहती वह थोड़ी रुकी और कान के पास मुँह ले जाकर बोली—"एक दूसरे के सहारे हम जिसे चाहते उसे बँदरिया बना डालते!"

फिरोजा ने नाटकीय ढंग से दुःख का प्रदर्शन करते हुए हाथ उठा कर गा दिया—

'ये न थी हमारी किस्मत कि विसाले यार होता, गर और जीते रहते, ये ही इन्तजार होता।"

अमिता हँस पड़ी और बोली—"अपना कुछ हाल तो बता। तूने कितने शिकार मारे? दीपू को तो ठिकाने लगा ही दिया होगा?"

फिरोजा तपाक् से बोली—"श्योर! पर वह बेचारा तो एकदम खरगोश निकला। वैसे आजकल एक शेर आया हुआ है। किसी को हाथ ही नहीं लगाने देता। एकदम संन्यासी समझो।"

अमिता ने गम्भीरता के साथ अपने दोनों होंठ दबा कर स्वीकारोक्ति के रूप में सिर हिलाया और कहा—"शेर का शिकार बड़ा खतरना होता है! यह किसी चिड़ीमार के बस का रोग नहीं। खैर, देखूँ तुम्हारे संन्यासी को भी! मैंने बहुतेरे महात्माओं को तलवे चटा दि हैं!"

फिरोजा ने किंचित् व्यंग्यात्मक मुद्रा बना कर कहा—"ऐसी

कहाँ की तीसमार खाँ है ! मेरा तो ख्याल है उसके आगे तेरी दाल गलने से रही। अपना-सा मुँह लेकर भाग खड़ी होगी।"

अमिता बोली—"तू अब मेरे मन से उतर गया। तुम लोगों को शिकार का कोई नियम भी मालूम है ? पहले चारा डालना होगा, फिर मचान बाँधना होगा। बाद में कहीं हाँका लगेगा। बड़े शिकार में अगर समय अधिक लगता है, तो आनन्द भी अधिक आता है !"

फिरोज़ा ने लिपिस्टिक से रंगे हुए लाल होंठों को जरा-सा सिकोड़ कर अपना मन प्रकट किया।

किन्तु अमिता उस ओर ध्यान न देकर अभियान का उद्देश्य उसे समझाती रही।

तब फिरोज़ा बोली—"ठीक है, आज प्लान भी हो ले। कुमार जी तो रोज आते हैं।"

इस भाँति संध्या का कार्यक्रम स्थिर करके दोनों सहेलियाँ विदा हुईं।

राकेश पूर्ण मनोयोग से खेल रहा था। उसके मन में आज एक विशेष उल्लास था। अब तक वह पचास रुपये जीत चुका था। तभी उसे ध्यान आया कि अगर फ्लश में उसके भाग्य ने साथ दिया होता तो उसकी जेब में कम-से-कम दस-पाँच हजार की रक़म अवश्य होती।

अब उस पर एक उन्माद-सा छा गया था। वह आपत्तिजनक कॉल देने लगता और भाग्य प्रत्येक बार उसके गले में विजयश्री डाल देता।

उसी समय फिरोजा ने आकर उसके पार्टनर से कहा—"मिस्टर राजू, आपको रत्नाजी बुला रही हैं। वे बाहर लॉन में खड़ी हैं।"

राजू के लिए रत्ना का नाम जादू का असर रखता था। वे उसकी पूजा करते थे और इसीलिए उनकी गणना, उसकी कृपा-कटाक्ष के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने वाले शहीदों में होती थी। उस समय खेल में उन्हें रस का अनुभव हो रहा था। विजय का लोभ भी कम न था। अतः यकायक उसकी स्थिति बड़ी दयनीय हो गयी।

तभी फिरोजा ने उनके हाथ से पत्ते ले लिये और कहा—"आपकी जगह मैं खेल रही हूँ। आप मिलकर तुरन्त आइये। बेचारी बड़ी दुखी मालूम हो रही हैं।"

इतना सुनते ही राजू महाशय अपना सन्तुलन खो बैठे और लपक-कर लॉन की ओर भाग खड़े हुए।

राकेश ने इस ओर विशेष ध्यान न दिया। वह एक सिद्धहस्त खिलाड़ी की भाँति खेलता रहा। यहाँ तक कि फिरोजा का स्थान अनिता ने ग्रहण कर लिया तो उस ओर भी उसका ध्यान नहीं गया। फिर कुछ ऐसा हुआ कि अधेड़ मिस्टर वेलान की कुर्सी पर, उन्हीं के साथ, मिसेज देसाई बैठ गयीं। कुछ अन्य लड़कियाँ भी चारों ओर से घेर कर खड़ी हो गई।

बदलते हुए वातावरण को देखकर राकेश को तनिक आश्चर्य हुआ, लेकिन उस ओर उसने अधिक ध्यान नहीं दिया, क्योंकि ऐसा तो अन्य टेबुलों पर नित्य ही होता था। वह अपना ध्यान पत्तों से बहकने नहीं

देना चाहता था। वह जानता था कि एकाग्रता भंग होते ही पाँसा पलट जायगा।

तभी पत्ते बाँटती हुई अमिता बोली—"आप बहुत अच्छा खेलते हैं।"

राकेश ने आँख उठाकर अमिता की ओर देखा। उसे प्रतीत हुआ कि वह स्वप्न देख रहा है। उसके मन में आया—यह तो साक्षात् उर्वशी है। पहले कभी इसे नहीं देखा; शायद आज ही आयी है।

अमिता के षड्यन्त्र के अनुसार फिरोज़ा बोल उठी—"वाकई बहुत अच्छा खेलते हैं।"

सब एक सम्मिलित स्वर गूँज उठा—"वाकई खूब खेलते हैं।"

राकेश का हृदय एक अकथनीय गर्व से फूल उठा। वह निश्चिन्त होकर खेलने लगा। परन्तु अब उसके ध्यान में अमिता का अमित सौन्दर्य और उसकी बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें घूम रही थीं। वह फिर भी जीत रहा था। उसे क्या मालूम था कि यह सब किसी षड्यन्त्र के विधानानुसार हो रहा है।

इधर अन्य लड़कियाँ, बीच-बीच में, राकेश की तारीफों का पुल बाँध रही थीं। उधर अमिता कभी-कभी उसके पैर को भी अपने पैर से दबा देती थी। राकेश जब कभी भी उसकी ओर दृष्टि उठाकर देखता, तो वह मुसकरा देती।

तब राकेश की हृद्गति थम जाती। उसकी साँसों का उतार-चढ़ाव क्रमहीन हो जाता। अमिता के रूप ने उसे असाधारण रूप से प्रभावित कर दिया था।

उस दिन उसने बहुत सोच-विचार कर अपने को सँवारा था। आज वह चटकीले और भड़कीले वस्त्रों के स्थान पर सादे और सुरुचिपूर्ण कपड़े पहने थी और ऊँचा, घोंसलानुमा केशविन्यास के स्थान पर उसकी पीठ पर नागिन-सी दो चोटियाँ लहरा रही थीं। उसका अनुमान था कि कृत्रिम सौन्दर्य के जाल से राकेश भड़क कर निकल भा

स्वाभाविक सौन्दर्य उसे अवश्य प्रभावित करेगा।

उसने इस स्थिति का पूर्ण अध्ययन किया। जब उसे निश्चय हो गया कि वह उचित प्रभाव डालने में सफल हो गयी है, तो उसने अपनी वेणी में गूंथी हुई गुलाब की कली निकाली और मसल कर मिसेज देसाई की ओर फेंक दी।

यह एक गुप्त संकेत था। तभी फिरोजा बोल पड़ी—"अब दो-चार हाथ फ्लश के भी हो जायँ, तो कितना अच्छा हो! हम लोग उसमें भी मिस्टर राकेश का रोल देखने को उत्सुक हैं।"

इतने में सभी लड़कियाँ चिल्ला उठीं—"हम भी खेलेंगे। मेरे भी पत्ते बाँट दो।"

कथन के साथ ही इधर-उधर से सबने कुर्सी खींच ली।

तभी अमिता ताश टेबुल पर पटककर बोली—"फ्लश के लायक मेरे पास पैसे नहीं हैं। तुम्हारी तरह मैं अमीर नहीं हूँ।"

फ्लश का नाम सुन कर राकेश के मन में भी इस प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई थी। वह परिस्थिति का समाधान नहीं कर पा रहा था। एक बार उसके मन में आया कि वह उठ कर चल दे। किन्तु तभी अमिता के कथन ने उसके बिखर कर टूटते हुए साहस को सहारा दिया। वह चुपचाप स्थिति के बदलते हुए स्वरूप को देखने लगा।

अमिता को इस प्रकार के क्लब के सदस्यों की आर्थिक स्थिति का ज्ञान न था। फिरोजा ने जब बताया था कि वह केवल ब्रिज खेलता है और एकाध प्याला काफी पीता है, तभी वह समझ गई थी कि राकेश की जेब कितनी भारी है।

अपने कथन से उत्पन्न प्रतिक्रिया का अध्ययन करते ही वह समझ गयी कि इस सम्बन्ध में उसका अनुमान ठीक है। तब वह बोली—"मैं इसी शर्त पर खेल सकती हूँ कि सीमा तय कर ली जाय।"

अब सभी एक स्वर में बोल पड़ीं—"मंजूर है।"

अमिता की योजना के अनुरूप सब कार्य चल रहा था। फिर ताश

बाँटे गये और राकेश के आगे नोटों का ढेर लगना प्रारम्भ हो गया।

इस भाँति राकेश के संवेदनशील हृदय में अनजाने ही अमिता के प्रति कृतज्ञता भर गई। ज्यों-ज्यों वह जीतता, नोटों की ढेरी को अपने सम्मुख खींचता, तब उसके मन में आता—काश, इसका सहयोग प्राप्त हो सके तो एक दिन मेरी भी गृह-दशा बदल सकती है।

उस समय राकेश के मन में तनिक-सा-भी भ्रम नहीं उत्पन्न हुआ कि वह बलि का बकरा है जिसे खिला-पिला कर मोटा बनाया जा रहा है!

फिर प्रतिदिन ऐसा होने लगा। अमिता उसकी संवर्धक बन गयी और वह उसके आकर्षण में खो गया। इधर उसका बैंक बैलेन्स बढ़ने लगा, उधर कॉफी के प्याले का स्थान सुरा के प्यालों ने छीन लिया।

अमिता ने धीरे से एकान्त में उससे वार्ता प्रारम्भ कर दी। फिर घनिष्टता बढ़ने लगी। जब अमिता को विश्वास हो गया कि उसके जाल को तोड़ने की शक्ति राकेश में नहीं है तो अपना अगला कदम उठाया और उसी दिन राकेश एक लम्बी रकम हार गया।

हारे जुआरी की मनःस्थिति घायल शेर के समान होती है। उसने पैसा समाप्त होने पर खेल बन्द करके उठना चाहा, तो अमिता ने आगे बढ़कर रोक दिया। उसे ढाढ़स बँधाया और खेलने के लिए ऋण दिया।

परन्तु अब तो उसे हारना था। योजनानुसार हारने की बारी आ गयी थी अमिता प्रोत्साहन के साथ रुपया देती रही और वह हारता रहा।

दूसरे दिन राकेश ने बैंक से रुपया लाकर अमिता का ऋण चुका दिया। किन्तु अब उसकी स्थिति खेलने लायक न थी। पर अमिता का षड्यंत्र अधूरा न था। उसने रुपया देकर उसे खेलने पर विवश कर दिया वह फिर हारा तो उसकी हिम्मत टूट गयी!

अवसर पाकर अमिता उसे अपने साथ बाहर लॉन प

और उस दिन उसने नारी के अमोघ अस्त्र का प्रयोग कर दिया।

उसके हाथ को अपने हाथ में डाल कर वह नाटकीय ढंग से भावपूर्ण स्वर में बोली—"हार-जीत तो खेल में होती ही है। इसमें दुखी होने की क्या बात है ? मैं तुम्हें दुखी नहीं देख सकती।"

राकेश को प्रतीत हुआ कि उसका स्वप्न साकार हो जायगा। उसने तो पहले ही दिन से उसको अपने हृदय में बैठा दिया था। भावना के उद्रेक में वह मौन बना रहा।

तभी उसके नेत्रों में अपनी आँख डाल कर वह बोली—"तुम नहीं जानते राकेश, मैं तुम्हारी पूजा करती हूँ। तुम मेरे आराध्य-देव हो। मेरे मन का सन्तुलन नष्ट हो गया है। यहाँ क्लब में, तुम्हारे सान्निध्य में बीते हुए क्षणों को स्मरण करती हुई मैं अगली भेंट का स्वप्न देखती रहती हूँ। मेरा मन संवेदनशील और चिन्ताकुल हो गया है। कभी मुझे भय होता है कि तुम मुझे पसन्द करते भी या नहीं ! कभी ध्यान आता है कि मेरा साधारण रूप-रंग भला क्या भायेगा ! परन्तु मुझे अपने प्रेम पर विश्वास है। तुम्हारे मिलने का प्रश्न उठे, तो मैं अपने को हारकर भी सुखी रहूँगी !"

कथन के साथ ही उसने अपना सर राकेश के कन्धे पर टिका दिया और नारी की मर्यादा-सीमा तोड़ कर उसे आलिंगन में कस लिया।

राकेश उसके कपटपूर्ण व्यवहार को न भाँप पाया और अमिता उसे अपने मायावी प्रेम के इन्द्रजाल में फाँस कर अपना मन्तव्य सिद्ध करने में सफल हो गयी।

प्रातः होने से कुछ ही पूर्व राकेश सोया था। इस कारण उसकी आँख नित्य की भाँति अपने नियमित समय पर न खुल सकी। पिछले दिवस की थकान और नैश जागरण के कारण वह देर तक सोता रहा

लगभग ग्यारह बजे जब उसकी आंख खुली तो अभ्यासानुसार उसकी दृष्टि अपनी कलाई में बंधी हुई घड़ी की ओर चली गयी। समय देख कर पहले तो वह घबरा गया और हड़बड़ा कर उठ बैठा। परन्तु ड्यूटी पर जाने का समय बीत चुका था; इसलिए वह पुनः लेट गया।

अब विगत संध्या से घटनाओं का जो क्रम प्रारम्भ हुआ था, उनकी ओर उसका ध्यान जा पहुँचा। थोड़ी देर के विश्राम ने उसे चिन्तामुक्त कर दिया था। अब उसे अतीत रंचमात्र भी परेशान नहीं कर रहा था और भविष्य के प्रति उसके मन में एक अदम्य उत्साह और विश्वास जागृत हो गया था।

सोफे पर लेटे हुए ही भावी कार्यक्रम की रूप-रेखा बना डाली। उसने निश्चय किया कि वह लाला जी के राज को संसार की दृष्टि से दूर रखने की चेष्टा करेगा, किन्तु स्वयं उस रहस्य को धीरे-धीरे अपने आप जान लेगा। लाला जी को नाराज करके उनकी वसीयत के नाम से वंचित हो जाना उसे मूर्खता जान पड़ी; बल्कि उसका विचार था कि वह उस सहायता के द्वारा अमिता को प्राप्त करने में सफल हो जायगा।

अब समस्या उत्पन्न हुई आफिस में उपस्थित न होने की। छुट्टी का आवेदन-पत्र दूसरे दिन देने का निश्चय करके वह संध्या के कार्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित करने लगा।

तभी उसे कमरे में किसी के चलने का स्वर सुनाई पड़ा और वह उठ कर बैठ गया। उसे जगा हुआ देखकर बलवन्त ने संकेत में चाय के लिए पूछा। राकेश उसका संकेत समझ गया और उसने सर हिला दिया।

चाय के साथ लालाजी भी पधारे। राकेश की दृष्टि में ज्यों ही उनके मुख पर पड़ी, त्यों ही उसकी समझ में आ गया कि रात्रि का तूफान शान्त हो चुका है। लाला जी अपने स्वाभाविक मूड में थे।

कमरे में प्रवेश करने के साथ ही उन्होंने उससे कहा—"बड़ी देर

तक सोते रहते हो। मैं दो घंटे से तुम्हारे जागने की राह देख रहा हूँ। जल्दी से मुँह-हाथ धोकर तैयार हो जाओ बादशाहो।"

लाला जी का कथन सुनते ही राकेश के मन में आया—वाह! यह एक ही रही! एक तो रात भर सोने नहीं दिया और अब मुझे कुम्भ-कर्ण का अवतार सिद्ध कर रहे हैं!

किन्तु उसने ऐसा कुछ न कह कर अत्यन्त विनम्रता के साथ कहा—"अभी लीजिये लाला जी, मैं यों चुटकी बजाते तैयार हो जाता हूँ।"

लाला जी मुसकराते हुए बोले—हमें तो शानदार भूख लगी है। रात को तो कुछ नहीं खाया था। उसके बाद कुछ प्रोग्राम बनाया जाय। शतरंज खेलते हो बादशाहो?"

चाय का घूंट कंठ से उतारते हुए राकेश बोला—"मैं बिल्कुल फ़ालतू नहीं हूँ।"

कथन के साथ ही उसने बलवन्त की ओर दृष्टि फेरी। उसे अपनी ध्यान से देखते हुए पाकर राकेश ने मुँह-हाथ धोने का संकेत किया और सर पर लोटे से पानी डालकर नहाने के अभिनय द्वारा अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया।

बलवन्त ने उसे अपने साथ आने का संकेत किया। स्पष्ट था कि वह उसका आशय समझ गया है। राकेश को यह देख कर प्रसन्नता हुई कि वह अपना मतलब सिद्ध कर सकने में सफल हो गया। किन्तु तभी लाला ने आगे बढ़कर बलवन्त को बाथरूम की राह दिखाने का आदेश दिया।

बाथरूम में पहुँच कर राकेश पुनः अपने विचारों में खो गया। आने वाली संध्या के विषय में वह सोच रहा था। तभी कपड़े उतार कर, नल के शीतल जल के नीचे भीगते हुए, उसका ध्यान अपने शरीर की ओर चला गया, तो तुरन्त ही उसे अमिता के शारीरिक—सौष्ठव का स्मरण हो आया। उसने अपने अंगों में एक तनाव का अनुभव किया।

फिर वह विगत रात्रि के सुन्दर प्रसंग में खो गया। उसके कानों में अमिता की मधुर स्वर लहरी गूँज उठी—'यू आर लवली माई डियर।'

उसे आश्चर्य हुआ कि उसमें ऐसा कौन-सा विशेष गुण है, जिसके कारण अमिता ने यह रिमार्क पास किया। तभी उसे ध्यान आया—वास्तव में सुन्दर तो अमिता है। लेकिन अन्य नारी भी तो ऐसी हो सकती हैं। अभी अन्य किसी नारी को इस रूप में देखने का अवसर ही कहाँ प्राप्त हुआ है!

नारी का रूप और शारीरिक गठन...! उसकी सोई हुई जिज्ञासा ने करवट बदली। तुरन्त ध्यान आया—यह तो वासना का प्रतीक है, अन्य नारी की कामना तो दूर, उसका विचार तक पाप है।

विचारों का कोष खुल गया। अमिता के इस रूप का ध्यान भी तो पाप ही है। विवाह से पूर्व वह भी तो पर-स्त्री है।

—किन्तु उससे तो मैं प्रेम करता हूँ, और किसी नारी से प्रेम करना पाप नहीं है।

—उत्तर मिला—हाँ, पाप नहीं है! किन्तु विवाह के पूर्व देह-मिलन पाप नहीं तो और क्या है? तुम्हारे मन में वासना न होती तो तुम ऐसा किस प्रकार कर सकते थे?

—किन्तु मैं उससे विवाह कर लूँगा। परस्पर प्रेम न होता तो वह मुझे इतनी छूट कैसे देती! यह भी तो सम्भव है कि वह मेरी भाँति पश्चात्ताप कर रही हो।

किन्तु उसका विचार तो भिन्न है वह तो प्रेम और विवाह को पृथक वस्तु मानती है।

तभी उसके मन में आया—अच्छा, शारीरिक सम्बन्ध स्थापित होने के पश्चात, अगर विवाह न हुआ तो...? उस दशा में यह सम्बन्ध वासना का मलिन रूप न धारण कर लेगा?

अब उसका विज्ञान एवं संस्कार बोला—यह भी तो इस मिलन

को लेकर परेशान होगी। परिणाम की ओर ध्यान जाते ही वह स्वयं विवाह का प्रस्ताव करेगी।

इस विचार के उदय होते ही वह इस भाँति आश्वस्त हो गया, मानों अमावस की निविड़ अंधकारमयी रात्रि को भेद कर अकस्मात् जीवनदाता सूर्य चमकने लगा हो।

उसने झट से तौलिये से बदन पोंछकर कपड़े पहनना प्रारम्भ कर दिया। फिर बाथरूम में लगे हुए शीशे में अपना मुख देखकर उसने अपनी ठुड्डी पर हाथ फेरा। मन में आया—शेव कर लेता तो अच्छा था। फिर बालों में तेल लगाकर, कंघे से उन्हें सँवारने लगा।

बाथरूम से बाहर निकलने के पूर्व उसने अपने मुंह पर स्नो लगाया और एक बार फिर शीशे में अपनी मुख-छवि देखी और मन-ही-मन सन्तोष का अनुभव करते हुए उसने बाथरूम का द्वार खोल दिया।

बाहर खड़ा हुआ बलवन्त उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसे अपने पीछे आने का संकेत कर वह भोजन-कक्ष में ले गया।

वहाँ लालाजी टेबुल पर बैठे हुए प्रतीक्षा कर रहे थे। सामने प्लेटें सजी हुई थीं। नाश्ते का विराट आयोजन देखकर उसे ज़रा आश्चर्य हुआ। साथ ही उसे लगा कि सब कुछ होते हुए भी कहीं कुछ कमी अवश्य है। तभी उसे ध्यान आया कि ऐसे समारोहों में परिवार के सभी सदस्य नियमानुसार उपस्थित रहते हैं।

तभी लालाजी बोले—"बैठो बादशाहो।"

कथन के साथ ही मिठाई की प्लेट लालाजी ने उसकी ओर बढ़ा दी। थोड़ा-थोड़ा चखने में ही राकेश का पेट भर गया। अब उसकी समझ में आया कि वास्तव में भोजन-सुख क्या होता है।

नाश्ता चल रहा था और उसके मन में चिन्ता के बवण्डर उठ रहे थे। वह विचार करने लगा—एक सौ अस्सी रुपये की अपनी नौकरी में तो जीवन का वास्तविक सुख उपलब्ध नहीं हो सकता। पिताजी कब तक रुपया भेजते रहेंगे। उनकी अपनी भी तो सीमा है। फिर वे सदैव

बैठे तो रहेंगे नहीं !

पिता का ध्यान आते ही उसे पिछले सप्ताह प्राप्त उस पत्र का स्मरण आ गया, जिसका अभी तक उत्तर उसने नहीं दिया था। गाँव से आये एक वर्ष से अधिक हो गया था। यों तो वे प्रति सप्ताह नियमित रूप से उसे पत्र लिखते थे और एकाध दिन के लिए गाँव आने का अनुरोध भी करते थे, पर राकेश खर्चे का ध्यान करके सदैव यही उत्तर देता था कि नौकरी नयी होने के कारण अभी छुट्टी नहीं मिल पा रही है।

इस बार उसके पिता ने लिखा था कि गठिया के कारण पैरों में कष्ट अधिक है। एक बार मिल जाओ तो अच्छा हो। फिर पता नहीं कि भेंट हो या न हो !

वैसे तो उसे अपने पिता से कोई विशेष स्नेह नहीं था। सच पूछो तो वह उन्हें अतिरिक्त आय का एक साधनमात्र मानता था। उसका विचार था कि एक प्रकार से वे उसके हीनत्व के उत्तरदायी हैं। अगर उन्होंने पूजा-पाठ में सारा समय न गँवाकर धनोपार्जन की चेष्टा की होती तो वह भी समाज में एक धनिक-पुत्र के रूप में प्रतिष्ठित होता। पिता के प्रति उसके विचार सदैव से कुछ ऐसे ही बन गये थे। किन्तु उनके पत्र ने इस समय उसे विचलित कर दिया। उसे ध्यान आया उस लोहे के सन्दूक का, जिसमें उसके पिता रुपये-पैसे रखते थे और जिसके अन्दर की झलक भी उसे कभी नहीं मिली थी। उसे विश्वास था कि उसके अन्दर काफ़ी मालटाल है।

अतः उसने सोचा कि वह शीघ्र ही गाँव जाने की व्यवस्था करेगा और पिताजी से इशारे-इशारे में कहेगा कि अच्छा हो, वे मोह त्याग कर सब कुछ उसके हवाले कर दें, अन्यथा एकाएक दुर्घटना हो जाने पर उनके जीवन-भर की कमाई कौन जाने, किसके हाथ लगे !

प्याली में केटली से चाय डालते हुए लालाजी बोले—"ज़िन्दगी तो तुम्हारी है ! न कोई फ़िकर, न ग़म ! एक हम हैं कि कभी चैन ही

नहीं मिलता। चाय पी लो तो चलो कहीं घूम आयें। क्या ख्याल है बादशाहो ?"

राकेश के कण्ठ से एक निःश्वास निकल गया। कुछ व्यथित स्वर में बोला—"आपको पता नहीं, पीड़ा इस संसार में हर व्यक्ति के साथ, किसी-न-किसी रूप में जुड़ी है। कितना अनोखा चक्कर है कि आप समझते हैं, मैं सुखी हूं और मैं समझता हूँ, आप सुखी हैं। हर व्यक्ति अपने ही दुःख को संसार का सबसे महान् कष्ट समझता है और समझता है कि उसे छोड़कर अन्य सभी लोग सुख के अगाध सागर में कल्लोल कर रहे हैं !"

लालाजी बोले—"मेरी स्थिति दूसरी है। मुझे सब प्रकार का सुख प्राप्त है। बस एक यही दुःख है कि···अब क्या कहूं !" इसके बाद एक निःश्वास लेकर कहने लगे—"मेरा मुंह बन्द है। ऐसा कुछ लगता है जैसे सीने में कैंसर हो गया हो, जिन्दगी में ऐसा कुछ घुन लग गया है, जिसने मुझे खोखला कर दिया हो। ग़नीमत है कि तुम्हारे साथ तो ऐसी कोई बात नहीं है। इसलिए कहता हूँ—तुम मेरा दर्द नहीं समझोगे, बादशाहो।"

राकेश बोला—"ऐसी बात नहीं है लालाजी। संसार में सभी काम एक दूसरे के सहारे चलते हैं। हर वस्तु की एक सीमा है। समय बड़े-से-बड़े घाव भर देता है। लेकिन यह बात तो तय है कि मन में किसी बात को रखने से घुटन उत्पन्न हो जाती है। किसी का दुःख-दर्द कोई बांट तो नहीं सकता, लेकिन दूसरे की सान्त्वना से शान्ति अवश्य प्राप्त होती है।"

लालाजी किंचित् आर्द्र कंठ से बोले—"यही तो दुःख की बात है कि मैं किसी से कुछ नहीं कह सकता। बात ही कुछ ऐसी है। छोड़ो भी, बीस साल बीत गये, अब क्या रह गया है, थोड़े दिन की जिन्दगी बची है वह भी कट जायगी। कभी-कभी यही सोचने लगता हूं काश किसी तरह से मैं अपना फर्ज पूरा कर पाता। मगर चाय तो पियो।

ठंडी हो रही है बादशाहो !"

अपने मन की पीड़ा व्यक्त करते हुए जब उनका ध्यान राकेश के सम्मुख रखे हुए प्याले की ओर गया तो वे अपनी स्वाभाविक मनःस्थिति में लौट आये और वाक्य के अंत तक पहुँचते हुए मुसकरा दिये।

राकेश ने प्याला उठाकर एक चुस्की ली। तभी उसके मन में आया कि जिस राज़ और फर्ज़ को लेकर लालाजी दुखी हैं, घनिष्ठता स्थापित होने के उपरान्त, वे स्वयं ही एक दिन उसके सम्मुख, इसी भाँति चाय का प्याला पीते हुए बीच का पर्दा हटा देंगे। ऐसा भी सम्भव है कि जिस राज़ को उन्होंने इतना तूल दे रखा है उसके मूल में कोई साधारण बात हो! अक्सर लोग भावुकता में पड़ कर साधारण-सी घटना के आधार पर राई का पहाड़ बना देते हैं।

चाय समाप्त करके प्याला मेज़ पर रखते हुए उसने अपनी समस्या को उनके समक्ष करने का निश्चय कर लिया। बोला—"मैं भी बड़ा परेशान हूँ। बात यह है कि जब तक पिताजी का साया बना है तब तक तो कोई बात नहीं, लेकिन उसके उपरान्त आप तो जानते ही हैं कि खेती-बारी आजकल के नवयुवकों के बस की बात नहीं। इसीलिए कोई अच्छी नौकरी ढूँढने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।"

लालाजी बोले—"नौकरी तो आगे-पीछे मिल ही जायगी। लेकिन मेरी राय में तो तुम्हें खेती करना चाहिए। उसमें बड़ा लाभ है। एक ट्रैक्टर खरीद लो। एक या दो ट्यूबवेल लगवा लो फिर देखो ज़मीन सोना उगलती है या नहीं बादशाहो!"

राकेश की समझ में नहीं आया कि वह किस प्रकार अपनी स्थिति प्रकट करे जिससे वह लालाजी की सहानुभूति का पात्र बन जाय।

एक मिनट वह चुप रहा और चाय के चम्मच को उठाकर मेज़ पर हलके से खटखटाकर एक लोकप्रिय धुन बजाने लगा।

फिर उसने ऐसा मुँह बनाया, मानो उसकी जिह्वा के नीचे कड़वी हरी मिर्च का टुकड़ा आ गया हो और नाटकीय ढंग से अपने स्वर में

दुःख और व्यथा भरकर उसने कह दिया—"असल में हालात कुछ ऐसे हैं जिनके कारण गांव में मेरा रहना सम्भव नहीं है। अगर पिताजी के बाद मैं वहां रहना भी चाहूँ तो मेरे प्राणों का भय है। फिर आप तो जानते ही हैं कि प्राणों का मोह किसे नहीं होता।"

अब लालाजी को वार्ता में रसबोध हो आया। बोले—"साफ़-साफ़ बात बताओ। शायद मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकूं। मुझे तुम पराया मत समझो, बादशाहो।"

लेकिन राकेश उठ खड़ा हुआ और बोला—"फिर कभी मौके से सुनाऊँगा। अभी तो मैं चलूंगा। एक मित्र के यहां जाना है। काफ़ी समय हो गया है। पौने दो बज गये।"

लालाजी उठ खड़े हुए और ड्राइंगरूम की ओर चलते हुए बोले—"कितनी देर में वापस आ रहे हो बादशाहो?"

उनके स्वर की आत्मीयता से राकेश चौंक उठा। अनजाने ही उसके मुख से विस्मय के साथ निकल गया—"वापस!"

लालाजी ने उसकी पीठ पर हाथ रख कर कहा—"हां! घर जा कर क्या करोगे? यहां तुम्हारी वजह से मेरा वक़्त आसानी से कट जायगा।"

अब वह बोला—"ऐसी बात नहीं है लालाजी।"

लालाजी तपाक् से बोले—"लौट कर आओ तब इस बारे में बातें होंगी। शाम की चाय के समय तक तो ज़रूर आ जाना।"

राकेश बोला—"संध्या को तो मैं क्लब में ही चाय पीता हूँ। कल किसी समय आने की चेष्टा करूँगा। मैं टेलीफोन कर दूँगा। आप चिन्ता न करें।"

लाला जी बोले—"कल नहीं आज! अच्छा रात को खाने के वक़्त तक तो फ़ारिग हो जाओगे। इतना समझ लो कि मैं खाना नहीं खाऊँगा। और तुम्हारा इन्तज़ार ही करता रहूँगा।"

विवशता का अभिनय करते हुए राकेश ने कह दिया—"अच्छी

बात है। मैं दस बजे तक पहुँच जाऊँगा।"

राकेश ने यह सब शिष्टाचार के लिए कहा था जब कि वास्तविकता यह थी कि उसे नाश्ते के व्यञ्जनों का स्वाद भूला नहीं था।

अब वह हाथ जोड़ कर चल दिया।

कुछ देर बाद तक तो वह निरुद्देश्य सड़क पर घूमता रहा। इधर कुछ दिनों में उसने अपने जीवन को ऐसे साँचे में ढाल लिया था कि उसके पास अतिरिक्त समय ही न रहता था। नियमित रूप से समय पर जागना, नित्य क्रिया से निपट कर भोजन बनाना, फिर मिल जाना और उसके पश्चात घर आकर स्नान करना, क्लब जाना और वहाँ से ठीक ग्यारह बजे वापस आना, सो जाना आदि सारे कार्य वह यंत्र की भाँति करता था। यहाँ तक कि उसके पड़ोसी व गली के दूकानदार जो उसकी आदतों से परिचित थे, उसकी गतिविधियों को देख कर ही समय का अनुमान कर लेते थे। रविवार के दिन भी उसका कार्यक्रम निश्चित रहता था। उस दिन वह अपने कपड़े धोता और स्वयं ही प्रेस करता था।

ऐसे व्यक्ति के लिए जब कोई व्यवधान उपस्थित हो जाता है तो उसे बड़ा कष्ट होता है। शृंखला की एक कड़ी भंग होते ही वह अपना सन्तुलन स्थिर रखने में असमर्थ हो जाता है। फिर कल संध्या से तो सभी कुछ गड़बड़ हो गया था

अचानक उसकी दृष्टि घंटाघर की बड़ी घड़ी पर जा पड़ी। चार बज कर पाँच मिनट हो गये थे। यह देखते ही उसकी तात्कालिक बुद्धि ने कहा—'घर चल कर अब क्लब चलने की तैयारी करो।'

वह तुरन्त रिक्शे पर जा कर जब घर पहुँचा तो उसके मन में विश्राम करने की इच्छा उत्पन्न हो गई। कपड़े बदलने के उपरान्त वह

बिस्तर पर लेट गया। ज्योंही उसने आंखें मूँद कर सोने का प्रयास किया कि मन के क्षितिज पर तूफान के लक्षण प्रकट हो उठे।

अमिता ने जब तक उसके जीवन में प्रवेश नहीं किया था वह पूर्ण-रूप से सन्तुष्ट था। भविष्य के प्रति भी वह एक प्रकार से निश्चित हो गया था। वेतन तथा पिता के द्वारा भेजे गये रुपयों से वह अपना व्यय सरलता से पूरा कर लेता था। फिर जब अमिता ने उसके प्रति रुचि एवं आत्मीयता प्रकट की, तो उसके तारुण्य को नारी आवश्यता जान पड़ी। अमिता को उसने अपने वर्ग की एक साधारण लड़की समझकर ही प्रोत्साहन दिया था। वह सोचता था कि दोनों मिल कर इतना तो कमा ही लेंगे कि सहज ही जीवन यापन हो सके।—क्योंकि उसकी साधारण वेश-भूषा एवं पुलश के समय धन के सम्बन्ध में दिये आश्वासनों से उसे विश्वास हो गया था कि वह साधारण परिवार की उन्हीं लड़कियों की भाँति है जो नौकरी करती हैं। परन्तु दो-चार दिन बाद जब अमिता के सम्बन्ध में उसे ज्ञात हुआ कि वह करोड़पति सेठ मुरली मनोहर की पुत्री है, तो उसके मन में भविष्य के प्रति दूसरे प्रकार के भावों ने जन्म लेना प्रारम्भ कर दिया। मन-ही-मन वह सोचने लगा था कि अमिता से विवाहोपरान्त वह उसकी सम्पत्ति के उपभोग का अधि-कार भी प्राप्त कर लेगा।

उसके मन में मूल रूप में केवल यही एक विचार था। जब अमिता को पूर्ण रूप से अपनी मुट्ठी में कर लेने की दृष्टि से वह वासना की भेंट चढ़ गया था। ऐसे चिन्तन में विश्राम करना उसके लिए दुष्कर हो उठा। वह उठकर बैठ गया, झट से सूट को ब्रुश से साफ कर कपड़े पहने और चल दिया।

उसने सोचा, घर में बैठने की अपेक्षा जल्दी से क्लब पहुँच जाने में अधिक लाभ होने की सम्भावना है। उसका अनुमान था कि अमिता के भी अन्तर्मन में ऐसा ही द्वन्द्व उठा होगा। वह भी अपनी दुर्बलता पर दुखी होगी। सम्भव है वह भी उससे मिलने को उत्कंठित होकर

ा, जिन्हें वह आज तक कहती आ रही थी। किन्तु राकेश के जाते उसके मन में विग्रह उत्पन्न हो गया। उसका विश्वास काँप उठा। ह-रह कर उसकी आश्चर्य में डूबी आँखें, उसके मन के निविड़ एकान्त एक याचक की पीड़ामय मुद्रा के रूप में, सुदूर क्षितिज पर टिमटिमाते ारों की भाँति चमक उठती थीं।

एक निःश्वास के साथ उसका नारीत्व उसे धिक्कारने लगा। आत्मा की प्रतारणा से आक्रान्त हो-होकर वह भीतर ही भीतर काँप उठी।

चुपके से कोई उसके कानों में कुहुक गया—'हाय तूने प्रेम के पुजारी को ठुकरा दिया!'

उसके अन्तःकरण ने कहा—'वासना की मूर्ति न बन, प्रेम की देवी बन। वासना का पुजारी तो सम्पूर्ति के पश्चात, मूर्ति को भग्न करके उसे बिखेर देता है, किन्तु प्रेमी अपनी पूजा से अमरत्व का सृजन करता है।'

उसका हृदय चीत्कारने लगा—'अनायास हाथ लगे हीरे को तूने इस तरह फेंक दिया! अब निरन्तर कंकड़-पत्थर में अपना सुख ढूंढना—!'

उसकी बुद्धि बोल उठी—'वासना एक व्याधि है। इससे वांछनीय तृष्णा की तृप्ति नहीं होती। क्षणिक सुख तो दुख को जन्म देता है। वास्तविक सुख का उद्भव होता है, जब वासना मर जाती है।'

एक के बाद दूसरा चित्र उसके मानस-पटल पर उभरने औ मिटने लगा। पौराणिक युग से लेकर आज तक की प्रसिद्ध प्रेम गाथाएँ उसे स्मरण आयीं। पति को ही प्रेमी के रूप में देख क और प्रेमी को ही पति मान कर ही मन-ही-मन उसे भगवान व भाँति पूजने वाली नारी अब उसकी कल्पना में साकार हो उठी।

अब एकाएक उसके मन में सदगृहणियों के सुखी जीवन व झाँकी चित्रित होने लगी। उसके वात्सल्य और ममत्व ने अँगड़ाई ले नेत्र खोल दिये और कराहते, सिसकियाँ भरते हुए पूछा—'कुछ मे

भी ध्यान करो। देखो तुम्हारी इस वासना से मेरी क्या दशा हो रही है! उस गोद की कल्पना करो जिसमें कृष्ण-कन्हैया की भाँति एक छोटा-सा शिशु, किलकारियाँ भर रहा है। वह तुम्हारा अपना नन्हा मुन्ना है।"

अमिता को प्रतीत हुआ जैसे किसी ने उसका आँचल खींच लिया है। एक अत्यन्त मन्द, कोमल स्वर—'माँ' उसके कानों में गूँज उठा। सहसा उसके कन्ठ से एक आह निकल पड़ी और उसने अपने नेत्र मूँद लिये। अनजाने ही उसके आर्द्र कंठ से, उसका हृदय मथती हुई, एक अस्फुट ध्वनि—मेरे मुन्ने—निकल कर वातावरण में लीन हो गयी।

वासना का दानव तथा प्रेम का देवता दोनों अब उसके सम्मुख अपने अपने स्वरूप में खड़े थे।

अन्त में नारी की विजय हुई।

अमिता ने निश्चय किया कि वह वासना की क्षुद्र नाटकीय जीव न बन कर प्रेम की पुजारिन बनेगी। वह राकेश के साथ विवाह करके अपने नारी जीवन को सार्थक बनायेगी।

उसका अनुभव बोला—रूप के पुजारी तो सब होते हैं। सब को क्षण भर के सुख की कामना होती है। किन्तु प्रेमी तन की नहीं, आत्मा की पूजा करता है। राकेश को केवल तुम्हारे तन से प्रेम नहीं है, वह तो तुममें प्रेम करता है। केवल तुमसे···तुम्हारे मानस से। तन तो केवल तुम्हारा एक अंग है। पशु और मनुष्य का अन्तर भी प्रेम पर ही आधारित है। प्रेम ही क्षुद्र मानव को देवता बना देता है।

तभी वासना ने अपना पक्ष प्रतिपादित करते हुए उसे समझाने की चेष्टा की—'पागल न बन अमिता। सोच कर देख—एक खूँटे से बँधा पशु और पिंजरे में बन्द पक्षी के जीवन की अपेक्षा स्वतन्त्र विचरण करने वाले एक स्वच्छन्द गगन विहारी के जीवन-सौख्य को समझ। घिसे-पिटे जीवन की अपेक्षा नित्य नया अनुभव, प्रतिदिन नया . नित्य प्रति समरस भोजन से एक दिन विरक्ति हो जाती है। नयी

एवं विविधता का अपना एक अलग आनन्द है। जल्दबाज़ी में कहीं ऐसा कोई कदम न उठ जाय जिसके लिए जीवन भर पछताना पड़े। तू विवाह कर, अवश्य कर, लेकिन उसी को ध्येय मान कर उसमें रम मत जा। कहीं ऐसा न हो कि विवाह के चक्कर में तेरी वासनाओं की वलि चढ़ जाय।'

तब उसकी आत्मा धिक्कारने लगी—तब तो तू सड़कों पर फिरने वाले कुत्ते और विल्ली के समान है।

तब तत्काल उठ कर ड्रेसिंग टेबुल के सम्मुख जाकर खड़ी हो गयी और शीशे में अपने प्रतिविम्ब को सम्बोधन करती हुई बोली—मैं पशु नहीं हूँ। मैं सिद्ध कर दूंगी कि मैं वह नारी हूँ, प्रेम की वलिवेदी पर अपने-आपको उत्सर्ग कर देना ही जिसकी परम्परा है।

उसके नेत्रों में आत्म-विश्वास की ज्योति जगमगा उठी।

अब उसके मनोमंथन का उद्वेलन शान्त हो गया। ज्वार का उफ़ान उतरते ही उसे प्रेम के अलौकिक सुख की अनुभूति होने लगी।

आँसू पोंछती हुई अपने ही प्रतिविम्ब से वह बोली—मैं ऐसा कुछ न जानती थी। मुझे क्षमा करो देवि! मैं राह से भटक गयी थी।

ऊषा की लालिमा वातायन के पारदर्शक शीशे को पार कर उसके शयन-कक्ष में आ गयी। तभी सहसा अमिता ने देखा कि उस लालिमा की भटकी हुई किरण उसके प्रतिविम्ब के मस्तक पर आ टिकी है। उसे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, मानो सुख-सौभाग्य का कुमकुम उसके मस्तक पर भगवान ने स्वयं लगा दिया हो।

पक्षियों के कलरव से गुंजित वातावरण में वह गुनगुना उठी—'ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी।'

और वह बाथरूम के अन्दर चली गयी।

कुछ क्षण बाद बाथरूम का द्वार खुला और एक सौभाग्यवती नारी की भाँति एक सद्यः स्नाता रमणी, निकल पड़ी, जिसके बिखरे बालों के सिरे पर छोटे-छोटे मोती चमक रहे थे। निश्चय ही वह नारी वह

अमिता न थी, जिसके नेत्रों में वासना का अथाह सागर लहराया करता, जिसके मुख पर लालसा की ऊष्मा लालिमा बन कर छाई रहती थी। इसके नेत्रों में तो प्रेम की स्निग्ध ज्योति थी और मुख पर तृप्ति की अलौकिक छटा और हृदय में अपरिमित उद्दाम इच्छा के स्थल पर प्रेम की मधुर वंशी का नैसर्गिक कलरव। अब उसे एक अलौकिक सुख और सन्तोष की चेतना व्याप्त हो गयी।

एक बड़े टर्किश टावल से अपने केश पोंछती हुई वह संध्या के मिलन का कार्यक्रम बनाने लगी।

तभी पलंग के सिरहाने एक छोटे स्टूल पर रखा हुआ फोन टन-टना उठा। उसे आश्चर्य हुआ इतने सवेरे किसने मुझे याद किया।

तभी उसे ध्यान आया राकेश का। उसके मन के तट पर सहसा आह्लाद की एक तरंग आ गयी। वह लपक कर फोन के पास जा पहुँची। रिसीवर उठा कर कान से लगा वह बोली—"मैं अमिता बोल रही हूँ।"

तभी उस ओर से स्वर आया—"और मैं फिरोजा हूँ।"

अमिता का स्वर खण्ड-खण्ड होकर बिखर गया। किंचित् वितृष्णा से वह बोली—"इतने सवेरे ! कोई खास बात है क्या ?"

फिरोजा सोल्लास बोली—"तुम्हें मुबारकबाद देने के लिए, रात भर जागी हूँ। कमाल कर दिया तुमने।"

अमिता बोली—"फिरोजा, आग लग गयी है।"

फिरोजा बोली—"तुम्हारा जाल कमज़ोर था, तभी तो उसे तोड़कर शिकार निकल भागा। पर तुम घबराओ नहीं। बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी। आज शाम को ही निपट लेंगे।"

अमिता दुखित स्वर में बोली—"तुम नहीं समझोगी फिरोजा, और जान पड़ता है एक तुम क्या, कोई नहीं समझेगा !"

कथन के साथ उसने रिसीवर रख दिया।

विस्मृति के निर्जन, असीम अन्धकारमय गह्वर की समाधि में प्रतीत

को स्थापित करके, मृत्मय भविष्य की अभिलाषिनी अमिता आगत के निर्मम विधान को भूल गयी। आज जीवन में प्रथम बार उसे प्रभु का स्मरण हो आया और उसने मन-ही-मन योगीराज भगवान कृष्ण को नमन किया और वह अपने उद्धार की प्रार्थना करने में लीन हो गयी।

राकेश के प्रस्थान के पश्चात् कुछ क्षण लाला हरचरणसिंह वहीं खड़े रहे। भाँति-भाँति के विचार उनके मन में उठ रहे थे। उनकी मुद्रा क्षण-क्षण बदल रही थी। किसी एक विचार को आते ही वे प्रसन्न हो जाते थे किन्तु जब उसी के साथ कोई शंका उत्पन्न होती तो वे चिन्तित हो उठते। बाहर जाते हुए राकेश को अपलक देख रहे थे। जब वह चौराहे के समीप जाकर दाहिनी ओर घूम गया तो अकस्मात उनके हृदय की कराह निश्वास बन कर शून्य में विलीन हो गयी।

आशंका के हिंडोले में, इधर-से-उधर, डूबते-उतराते हुए, आशा के टिमटिमाते दीपक को झंझावत के प्रचण्ड प्रकोप में प्रज्वलित रखने में संलग्न, लाला जी सर झुकाये मन्थर गति से, निःशब्द, दबे पाँव ऊपर जा पहुंचे।

उन्होंने द्वार खोला और अपनी पत्नी के समीप जा खड़े हो गये। विगत रात्रि के दृश्य में और इस दृश्य में रंचमात्र भी अन्तर न था। किन्तु लाला जी जानते थे कि उनकी पत्नी प्रतिमा की आँखें तो बन्द हैं, पर वे अचेत नहीं हैं। अतः उन्होंने सिरहाने बैठी हुई अंजना को बाहर जाने का संकेत किया।

एकान्त होते ही लाला जी के नेत्रों में प्रेम के तारे जगमगा उठे। पल भर वे अपनी रुग्ण पत्नी को अपलक देखते रहे। उनके नेत्रों में वही आतुरता थी जो सुहागरात में प्रथम बार घूंघट उठाते समय थी। समय की परिधि को लांघ कर वे अतीत में लीन हो गये। अचानक स्मृतियों

के इन्द्रजाल को तोड़ कर उन्होंने अपना हाथ प्रतिमा के मस्तक पर रख दिया।

प्रतिमा ने धीरे से हाथ बढ़ा कर उनके हाथ को अपनी निर्बल और कांपती हुई अँगुलियों से पकड़ लिया।

लाला जी स्नेह पूर्ण स्वर में बोले—"प्रभो।"

प्रतिमा ने धीरे से अपनी आँख इस भांति खोली, जैसे प्रातःकाल कमल प्रस्फुटित होता है।

लाला जी अत्यन्त मधुर किंचित् स्निग्ध स्वर में बोले—"कैसी तबियत है?"

प्रतिमा ने धीरे से कह दिया—"ठीक है। भोजन कर लिया?"

लाला जी बोले—"अभी चाय पी है। जानती हो किसके साथ?"

कथन के साथ ही वे मुसकरा उठे। इस भांति उन्होंने वातावरण का समस्त विषाद शान्त हो जाने की कामना की।

एक मुग्धा की भांति प्रतिमा ने पहले मुसकराने की चेष्टा की, फिर धीरे से कह दिया—"नहीं।"

लाला जी ने झुक कर धीरे से उसके कान में कह दिया—"एक देवदूत के साथ।"

कथन के साथ वे पलँग पर बैठ गये।

प्रतिमा किंचित् विस्मय के साथ बोली—"क्या कहा, देवदूत!"

लाला जी उत्साह से डोल उठे। बोले—"हाँ, देवदूत। कल रात को अचानक भेंट हो गयी थी। आज रात को वह फिर आयेगा।"

एक विषाद के साथ वह बोली—"रात में!"

कथन के साथ ही उसने अपना हाथ हटा लिया और पुनः आँखें बन्द कर लीं।

किन्तु लाला जी के उल्लास में कोई अन्तर न था। वे बोले—"किसी दिन तुम्हें उससे मिलाऊँगा। उसे देखते ही तुम सारा दुख भूल जाओगी। लेकिन सोचता हूँ पहले अंजना से मिला दूँ। दोनों···।"

उनका वाक्य पूरा न हुआ। प्रतिमा की सिसकारियों से कमरा गूंज उठा।

लाला जी ने उसको अपने निकट खींच लिया और बोले—"डरो नहीं प्रमो, सब ठीक हो जायगा।"

कथन के साथ ही वे उठ कर खड़े हो गये। द्वार की ओर बढ़ कर उन्होंने अँजना को पुकारा। वे जानते थे कि अँजना के आते ही प्रतिमा शान्त हो जायेगी।

अँजना ने कमरे में प्रवेश किया, तो माँ की दशा देख कर बोली—"आपने तो फिर रुला दिया !"

लाला जी ने आगे बढ़ कर उसके सर पर, आशीर्वाद स्वरूप, अपना हाथ रख दिया। उसके कथन की ओर ध्यान न देकर वे बोले—"तुम्हारा कालेज कब खुल रहा है अँजू ? तुमने अपने जाने की तैयारी कर ली ?"

अँजना के हृदय में फिर वही प्रश्न उठ खड़ा हुआ जिसका समाधान वह बचपन से ही नहीं कर पा रही थी। न उसके पिता इस विषय पर कुछ प्रकाश डालते थे और न माँ। उसकी समझ में नहीं आता था कि जब वे दोनों उसके ऊपर अपनी जान तक न्योछावर करते हैं तो उसे अपने से दूर क्यों रखते हैं ?"

वह बोली—"आप चाहते हैं कि मैं चली जाऊँ और आप माँ को इसी तरह रुलाते रहें। नहीं पिता जी, मैं नहीं जाऊँगी। यहाँ भी तो कालेज हैं। अब मैं···।"

बीच में ही प्रतिमा का क्षीण किन्तु दृढ़ स्वर सुनाई पड़ा—"नहीं तुम जाओ बेटा। मैं अब ठीक हूँ।"

बाप और बेटी दोनों प्रतिमा की ओर घूम पड़े।

अँजना धीरे से बोली—"अच्छा माँ, मैं चली जाऊँगी। तुम परेशान न होओ।"

लाला जी को उसके भोले मुख पर निराशा और पीड़ा की छाया देख पड़ी। उसके स्वर में निहित वेदना भी उनसे छिपी न रही।

तभी अंजना एक निःश्वास के साथ बोली—"पिता जी, अब तो मैं बड़ी हो गयी हूँ। अपनी देख-भाल भी कर सकती हूँ। जब से होश में आयी हूँ, माँ से अलग रही हूँ। घूमने फिरने के बहाने छुट्टियों में भी दूर-ही-दूर बनी रही हूँ। फिर भी मेरी आदत नहीं बदली। अब अलग रहने को मन ही नहीं करता।"

एकाएक स्तब्ध वातावरण बोझिल हो उठा और उसके स्वर में करुणा का अजस्र स्रोत निनादित होने लगा।

तभी वह बरबस उल्लास के साथ बोली—"मगर तुम चिन्ता न करो माँ, मैं तुम्हारी बेटी हूँ न? मैं अपने हृदय पर पत्थर रख लूँगी। तुम चाहोगी तो आज ही चली जाऊँगी, अभी···।"

हृदय का रक्त उसकी आँखों से आँसू बन कर बह निकला। उसने माँ की ओर से आँख घुमाकर पिता को देखा। वह एक क्षण रुकी, फिर सर नीचा किये द्वार की ओर बढ़ने लगी।

लाला जी उसी जगह, खड़े-खड़े, एक दार्शनिक की भाँति बोले—"नहीं बेटा अंजू, तुम कहीं नहीं जाओगी। तुम्हें यहाँ रहना अच्छा लगता है तो यहीं रहो। उसमें रोने की कौन-सी बात है पगली।"

अंजना को अपने कानों पर विश्वास न हुआ। एक पल तो वह चकित-विस्मित ठगी-सी खड़ी रही। किन्तु फिर झट से दौड़ कर अपने पिता के पैरों पर गिर पड़ी।

लालाजी ने उसे उठाकर वक्ष से लगा लिया।

अब अंजना अबोध शिशु की भाँति फूट-फूट कर रो पड़ी। लालाजी के नेत्रों में भी वात्सल्य के मोती झरने की भाँति बह निकले। मा संवेदन के ये पवित्र आँसू पृथ्वी के अन्तराल में धधकती ज्वाला ई जाने कब से बुझा रहे हैं!

प्रतिमा विस्फारित नेत्रों से पिता-पुत्री के इस देख रही थी।

इसी समय अचानक फिर एक हृदय-विदारक च।

से निकल पड़ी और उसका शरीर ऐंठने लगा।

लालाजी अंजना को वहीं छोड़ विद्युद्गति से पलँग की ओर बढ़ गये और अंजना ने आगे बढ़कर द्वार बन्द कर लिया।

तभी सीढ़ियों पर किसी के चढ़ने की पग ध्वनि सुनाई देने लगी।

राकेश जब क्लब में पहुँचा, तो उसके परिचितों में से कोई भी वहाँ न था। अधिक भीड़-भाड़ भी न थी। केवल कुछ लोग थे, जो दो या चार की गोष्ठी यत्र-तत्र जमाये हुए थे। प्रत्येक के सामने सुरा का गिलास था, चाहे वह ताश के पत्तों पर नज़र जमाये हो या गुपचुप वार्ता में लीन हो। इस समय वहाँ अधिकतर बड़े-बड़े पदाधिकारी ही आते थे, जो दिन भर की थकान उतारने के लिए सुरा की आड़ में उद्योग-पतियों से सौदेबाज़ी करते थे। चंचला लक्ष्मी इस कौशल से एक की जेब से फुदक कर दूसरे की जेब में पहुँच जाती थी कि दोनों भ्रष्टाचार की परिधि के बाहर ही बने रहते।

उत्फुल्लमना राकेश जब घर से क्लब के लिए चला था, उस समय उसके मन में एक अटूट आत्म-विश्वास और उद्दाम उत्साह था। लेकिन अब धीरे-धीरे उसके मन में एक शंका जन्म ले रही थी। कदाचित् इसीलिए वह चुपचाप एक मेज पर बैठा हुआ शून्य दृष्टि से वातावरण को देख रहा था।

उसके मन में बार-बार यही आशंका उत्पन्न हो जाती, यदि अमिता से विवाह न हुआ तो? इस प्रश्न का उसके पास एक उत्तर था—तो उसका जीवन नष्ट हो जायगा। अमिता अब उसके लिए प्रेम की सम्पूर्ति मात्र न होकर, सुख और समृद्धि की राह बन गयी थी।

उसका विचार था कि विवाह उससे न हुआ तो किसी-न-किसी से तो हो ही जायगा। किन्तु क्या वह भी अपने साथ प्रचुर धन लायेगी?

यही भय उसकी उद्विग्नता का मुख्य कारण था।

उसके मन की अकुलाहट जब सिगरेट के धुएँ से न शान्त हुई तो उसने सोचा कि समय काटने के लिए काफी की चुसकी क्यों न लगाई जाय। झट से उसने बेयरे को पास आने का संकेत किया।

लेकिन जब बेयरे ने समीप आकर अभ्यस्त रूप से पूछा—"रम या व्हिस्की ?" तो राकेश को प्रतीत हुआ कि उसे काफी की नहीं वास्तव में सुरा की आवश्यकता है। उसके उखड़े हुए मूड को वही न केवल सम्भाल सकती है वरन् अमिता से वाक्युद्ध करने का साहस भी दे सकती है। अतः उसने धीरे से कह दिया—"व्हिस्की।"

फलतः बेयरा ने व्हिस्की की बोतल के साथ सोडा और गिलास लाकर सामने रख दिया और पूछा—"साथ के लिए भी कुछ लाऊँ—काजू या वेफर्स ?"

अनुभवी बेयरा इस तरह सैकड़ों नवयुवकों को बचपन से देखता आ रहा था। वह अनाड़ी और खिलाड़ी का अन्तर पहचानता था। खिलाड़ी सदैव पेग का आर्डर देता है, पर अनाड़ी केवल नाम लेता है। इसी वर्ग से इनाम भी अधिक मिलता है और बोतल में बची हुई शराब भी।

राकेश बोला—"दोनों।"

राकेश ने कार्क खोल कर गिलास में सुरा उँडेली फिर वह उसमें सोडा मिलाकर चुस्की लेने लगा। बीच-बीच में कभी काजू उठा कर टूँगता, कभी चिप्स का टुकड़ा मुँह में रख लेता।

धीरे-धीरे उसके अन्तर्मन की कसैली व्याकुलता मिटने लगी और उसे रस आने लगा। कुछ ही समय में अमिता व देहरस एकाकार हो गये। मादकता इतनी गहराने लगी कि वह अपने लक्ष्य को भूल गया। अब उसके मन में केवल देहरस प्राप्ति की कामना ही शेष बची थी।

राकेश सुरा पी रहा था, उसे परिणाम का बिलकुल पता न था।

अमिता ने जब फ़ोन बन्द कर दिया तो फिरोज़ा का हृदय क्रोध और ईर्ष्या से भर गया। उसके दर्प साकार होकर उसे ललकारने लगे। तत्काल उसके मुँह से निकल गया—मतलब सिद्ध हो गया तो अब यह मुझसे बात भी नहीं करती, बच्चा समझती है मुझे! अकेले-ही-अकेले सब कुछ हज़म करना चाहती है। मेरा हिस्सा ही गोल कर दिया इसने!

उसे लगा कि अमिता सामने खड़ी हुई हँसती हुई कह रही है—'लो यह रहा तुम्हारा हिस्सा।' उसकी कल्पना में एक क्षण के लिए राकेश आया, फिर धीरे-धीरे उसका आकार बदलने लगा। अमिता का अट्टहास तीव्र से तीव्रतर हो चला और राकेश एक आम में परिणित हो गया। फिरोज़ा की कल्पना ने अमिता को पहले आम चूसते देखा, फिर देखा कि उसने रसहीन आम की गुठली को धूल में फेंक दिया है। फिर उसने उसे उस ओर संकेत करते हुए भी देखा। फिर उसे प्रतीत हुआ, अमिता मुँह बनाकर ठेंगा दिखाती हुई उससे कह रही है—'ले, तू भी जी भर कर खा ले, चाट ले—चूस ले!'

वह नागिन की भाँति तड़प उठी। प्रतिशोध की कामना से वह पागलपन की सीमा तक जा पहुँची। अब वह अपने कोमल गद्देदार पलँग पर जलाशय से निकाल कर जलती हुई बालू पर पड़ी हुई मछली की भाँति तड़पने लगी!

बचपन की सखी और आज तक के समस्त अभियानों की भागीदार अमिता के मानसिक परिवर्तन की वह कल्पना भी न कर सकी। भावना में पड़कर उसकी समझ में यही आया कि अमिता अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए उसके साथ बेईमानी कर रही है!

वासना में सांगोपांग डूबी हृदयहीन नारियों के व्यावहारिक कोष में प्रेम और विवाह जैसे पवित्र शब्द अर्थहीन होते हैं। उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की कि विविधता की पुजारिन अमिता प्रेम के जाल में फँस जायगी। यों तो उसने अमिता के सिवा अन्य सहेलियों को भी

प्रेम का नाटक रचते देखा था। उसने स्वतः भी समय-समय पर यही नाटक खेला था। वह सोचती थी सभी का ध्येय स्वार्थ-सिद्धि मात्र रहा है और यही सदा रहेगा भी।

निदान उसका मन अमिता से प्रतिशोध लेने के लिए व्याकुल हो उठा। वह भाँति-भाँति के ताने-बाने बुनने और उनके परिणामों पर विचार करने लगी।

एकाएक विद्रूप भरी मुसकान उसके होंठों पर नाच उठी। अपने अशान्त मन को स्थिर करके वह रिसीवर उठा कर निर्धारित नम्बर डायल करने लगी।

पल भर में उधर से किसी ने पूछा—"कौन बोल रहा है!"

फ़िरोज़ा अपने स्वर में संसार भर की मिश्री घोल कर बोली—"मैं हूँ फ़िरोज़ा सेठजी! आप बिज़ी है क्या?"

सेठ मुरली मनोहर तपाक् से बोले—"क्या कभी ऐसा हो सकता है, तुम फ़ोन करो और मैं कहूँ बिज़ी हूँ।"

फ़िरोज़ा को सेठ जी के अन्तस्तल में साँस लेती हुई इच्छा का पूर्ण ज्ञान था। यों भी वह जानती थी कि अधेड़ अवस्था के पुरुषों को किस भाँति नचाया जाता है। बचपन से वह अमिता से मिलने के लिए सेठ जी की कोठी जाती रही है। फिर वय.सन्धि के साथ ही जब उसे पुरुषों की चितवन की भाषा पढनी आ गयी, तब से तो वह सेठजी के मन को पहचानने लगी थी।

इसके सिवा अभी कुछ ही दिन पहले उसकी सेठजी से भेंट अचानक एक कवि-सम्मेलन मे हो गयी तो उन्होने उसके कान में धीरे से कहा था—'मुझे एक बहुत बढ़िया फिरोज़ा दिखा था सो मैंने तुम्हारे लिए खरीद लिया। जयपुर से ज़ोहरी आया था। मैंने अँगूठी में जड़वा दिया है। किसी दिन आकर ले जाना।'

इसका अर्थ फिरोज़ा समझती थी। अतः वह उनके पास नहीं गयी [illegible] थी। किन्तु आज अमिता से बदला लेने की इच्छा [illegible]

सेठजी को सन्तुष्ट करने का निश्चय करके ही फ़ोन कर दिया था।

अब वह बोली—"समय न हो तो रहने दीजिए। मैं फिर फ़ोन करूँगी।"

फलतः फिरोज़ा अपनी इस चाल में सफल हो गयी।

सेठजी तड़प उठे और बोले—"इस समय मैं बिलकुल खाली हूँ। भगवान कसम मैं कुछ भी काम नहीं कर रहा हूँ। तुम बोलो न, मेरे लायक कोई सेवा?"

अब फिरोज़ा कुछ रूठने के स्वर में बोली—"आप तो भूल ही गये मुझे! एक दिन आपने कहा था न, फिरोज़ा को अँगूठी के लिए।"

सेठजी हर्ष विह्वल स्वर में बोले—"भगवान कसम, भई क्या कही है! तो बस तुरन्त आ जाओ। मैं तिजोरी से निकाल कर अलग रखे लेता हूँ।"

फिरोज़ा मान भरी वाणी में बोली—"जाइये, आप बड़े वो हैं। कभी सोचा है मुझे अंगूठी लेते देख कर अमिता क्या कहेगी? सभी सहेलियों से यही न कहेगी कि उसके पिता ने मुझे यह दान दिया है! ज़रा सोचिये कि मैं भिखारी हूँ क्या? मैं तो आपका उपहार समझकर लेना चाहती हूँ।"

सेठ जी झट बोल उठे—"वह उपहार तो है ही। मैं कब कुछ और समझ रहा हूँ।"

अब सेठ जी के मन में आया, उनकी अपनी ही बेटी मार्ग का काँटा बन रही है।

तभी फिरोज़ा बोली—"आप मेरे यहाँ आ जाइये। अब्बा मियाँ नहीं हैं। यहाँ मैं ही हूँ अकेली।"

उत्तर सुनकर सेठ जी नशे में आ गये। वे गद्‌गद् स्वर में बोले—"तो मैं आया, बस अभी आया। अँगूठी निकाल लूँ और कहो तो एक हार भी फ़र्स्ट क्लास लेता आऊँ।"

सेठ जी भी कच्चे खिलाड़ी नहीं थे।

फिरोजा ने उत्तर दिया—"आपकी जूती भी मेरे सर आँखों पर है।"

सेठ जी बोले—"राम-राम। यह क्या कहने लगी तुम। अच्छा, मैं अभी आता हूँ।"

कथन के साथ ही उन्होंने फ़ोन बन्द कर दिया।

फिरोजा झट से टेबल के सामने जा शृंगार में संलग्न हो गयी।

थोड़ी देर बाद उसके शयन कक्ष में सेठ जी बैठे थे और वह उन्हीं के समीप सट कर बैठी, उनके दिये हुए हार व अँगूठी के नग की प्रशंसा कर रही थी। कभी-कभी तो वह जान-बूझकर अपना आँचल गिरा कर उनकी गोद में लुढ़क जाती।

. उसकी समझ में ही न आता था कि उसका अचूक, अमोघ अस्त्र आज विफल क्यों हो रहा है। सेठ जी ने पहले तो बड़ा उत्साह दिखाया था, किन्तु अब वे कुछ हाँफने लगे। जब फिरोजा की कुछ समझ में न आया तो उसने स्वयं ही आगे पग बढ़ाने का निश्चय कर लिया।

अतः उसने पलँग की ओर संकेत करके कहा—"आप थक गये हैं। थोड़ा विश्राम कर लीजिये।"

सेठ जी ने उसके लोकट ब्लाउज के अन्दर से झाँकते हुए मांसल उभार की ओर दृष्टि डालकर कहा—"ठीक है। मैं आराम से बैठा हूँ।"

अब फिरोजा सब समझ गयी। बोली—"आप नहीं लेटेंगे तो मैं यह कुछ नहीं लूँगी।"

कथन के साथ ही वह स्पष्टरूप से उनकी गोद में लेट गयी।

सेठ जी के हाथ बहकने लगे। वे बोले—"बुरा न मानना। मैं फिर आऊँगा।"

फिरोजा के मन में आया कि क्यों न वह उनके मुँह पर एक शानदार चाँटा जमाती हुई कह दे—'खूसट कहीं का!'

इतने में अवसर अनुकूल देखकर उसने अपनी बात छेड़ दी।

सेठजी को सन्तुष्ट करने का निश्चय करके ही फ़ोन कर दिया था।

अब वह बोली—"समय न हो तो रहने दीजिए। मैं फिर फ़ोन करूँगी।"

फलतः फिरोज़ा अपनी इस चाल में सफल हो गयी।

सेठजी तड़प उठे और बोले—"इस समय मैं बिलकुल खाली हूँ। भगवान कसम मैं कुछ भी काम नहीं कर रहा हूँ। तुम बोलो न, मेरे लायक कोई सेवा?"

अब फिरोज़ा कुछ रूठने के स्वर में बोली—"आप तो भूल ही गये मुझे! एक दिन आपने कहा था न, फिरोज़ा की अँगूठी के लिए।"

सेठजी हर्ष विह्वल स्वर में बोले—"भगवान कसम, भई क्या कही है! तो बस तुरन्त आ जाओ। मैं तिजोरी से निकाल कर अलग रखे लेता हूँ।"

फिरोज़ा मान भरी वाणी में बोली—"जाइये, आप बड़े वो हैं। कभी सोचा है मुझे अंगूठी लेते देख कर अमिता क्या कहेगी? सभी सहेलियों से यही न कहेगी कि उसके पिता ने मुझे यह दान दिया है! ज़रा सोचिये कि मैं भिखारी हूँ क्या? मैं तो आपका उपहार समझकर लेना चाहती हूँ।"

सेठ जी झट बोल उठे—"वह उपहार तो है ही। मैं कब कुछ और समझ रहा हूँ।"

अब सेठ जी के मन में आया, उनकी अपनी ही बेटी मार्ग का काँटा बन रही है।

तभी फिरोज़ा बोली—"आप मेरे यहाँ आ जाइये। अब्बा मियाँ नहीं हैं। यहाँ मैं ही हूँ अकेली।"

उत्तर सुनकर सेठ जी नशे में आ गये। वे गद्गद् स्वर में बोले—"तो मैं आया, बस अभी आया। अँगूठी निकाल लूँ और कहो तो एक हार भी फ़र्स्ट क्लास लेता आऊँ।"

सेठ जी भी कच्चे खिलाड़ी नहीं थे।

फिरोज़ा ने उत्तर दिया—"आपकी जूती भी मेरे सर आँखों पर है।"

सेठ जी बोले—"राम-राम। यह क्या कहने लगी तुम। अच्छा, मैं अभी आता हूँ।"

कथन के साथ ही उन्होंने फ़ोन बन्द कर दिया।

फिरोज़ा झट से टेबल के सामने जा शृंगार में संलग्न हो गयी।

थोड़ी देर बाद उसके शयन कक्ष में सेठ जी बैठे थे और वह उन्हीं के समीप सट कर बैठी, उनके दिये हुए हार व अँगूठी के रूप की प्रशंसा कर रही थी। कभी-कभी तो वह जान-बूझकर अपना यौवन दिखा कर उनकी गोद में लुढ़क जाती।

उसकी समझ में ही न आता था कि उसका अचूक, अमोघ अस्त्र आज विफल क्यों हो रहा है। सेठ जी ने पहले तो बड़ा उत्साह दिखाया था, किन्तु अब वे कुछ हाँफने लगे। जब फिरोज़ा की कुछ समझ में न आया तो उसने स्वयं ही आगे पग बढ़ाने का निश्चय कर लिया।

अतः उसने पलंग की ओर संकेत करके कहा—"आप थक गये हैं। थोड़ा विश्राम कर लीजिये।"

सेठ जी ने उसके लोकट ब्लाउज़ के अन्दर से झाँकते हुए यौवन उभार की ओर दृष्टि डालकर कहा—"ठीक है। मैं आराम से बैठा हूँ।"

अब फिरोज़ा सब समझ गयी। बोली—"आप नहीं लेटेंगे तो मैं यह कुछ नहीं लूँगी।"

कथन के साथ ही वह लाड़-प्यार से उनकी गोद में गिर गयी।

सेठ जी के हाथ बहकने लगे। वे बोले—"बुरा न मानना। मैं फिर आऊँगा।"

फिरोज़ा के मन में आया कि क्यों न वह उनके मुँह पर एक जोर-दार चाँटा जमाती हुई कह दे—"बूढ़ा कहीं का!"

इतने में अवसर अनुकूल देखकर उसने अपनी बात छेड़ दी।

बोली—"कुछ वसंत की भी खबर है। अमिता जवान हो गई। उसकी शादी क्यों नहीं कर देते ? किसी दिन बिना बाजा-गाजा के नाना बन जाओगे।"

सेठ जी चौंक उठे। बोले—"क्यों, क्या हुआ ?"

फिरोज़ा ने अब सीधा वार कर दिया—"अभी तो कुछ नहीं हुआ है लेकिन रोज़ दुलहिन बनने वाली तरुणी किसी भी दिन माँ बन सकती है। यों भी आप राह चलते किसी ऐरे ग़ैरे को तो दामाद बना नहीं सकते ! मैंने इसलिए आपको बता दिया कि आपकी इज्जत कहीं चौराहे पर नीलाम न हो जाय !"

सेठ जी को अपनी पुत्री से ऐसी आशा न थी। असीम क्रोध व घृणा से उनका हृदय जल उठा। वे बोले—"मैं अभी उसकी खबर लेता हूँ। मारे हँटरों के उसकी खाल खींच लूँगा। तुम जानती नहीं हो फिरोज़ा, मैं बड़ा कट्टर आदमी हूँ।"

फिरोज़ा बोली—"ज़रा ठण्डे दिल से काम लीजिये। मारपीट से तो बात और भी फैल जायगी। आप तो किसी बहाने उसे शाम को क्लब जाने से रोक दीजिये। वह इतनी समझदार है ही। दो-चार दिन में समझ ही जायेगी कि आपको सब कुछ मालूम हो गया है। फिर झट से उसकी शादी कर दीजिएगा।"

सेठ जी बोले—"हाँ, यह तरकीब ठीक है।"

अब फिरोज़ा उठकर बैठ गयी और अपने वस्त्र ठीक करके बोली—"मैं टेलीफ़ोन करूँ तभी आइयेगा। नहीं तो अब्बा मियाँ को तो आप जानते हैं ! आपके तो बचपन के दोस्त ठहरे। गोली पहले चला देते हैं बात बाद में करते हैं। समझ में न आया हो तो ड्राइंग रूम में टँगे हुए शेर, चीतों के मुँह से पूरा किस्सा सुन लीजिये।"

सेठ जी बोले—"मैं जानता हूँ। तुम जब कहो मैं सेवा में हाजि हो जाऊँ। वैसे कहीं और होल नाइट प्रोग्राम रक्खो तो मैं···भई क्य बात है तुम्हारी !"

मिस्टर भूपतलाल भी थे और राकेश के दुर्भाग्य से फ़िरोज़ा उन पर विशेष कृपा रखती थी। उसकी सहेलियों का कथन था कि वे अगर कुवांरे होते तो वह उनसे विवाह कर लेती। यही मिस्टर भूपतलाल उस मिल के जनरल मैनेजर थे, जिसके दफ़्तर में राकेश सैकड़ों क्लर्कों में से एक था।

और फ़िरोज़ा ने भूपतलाल से ही इस अभियान में सहायता लेने का निश्चय किया। उस समय उसे मालूम न था कि वे उसके अन्नदाता एवं भाग्य विधाता हैं। उसके ध्यान में तो केवल ऐसे सहायक की आवश्यकता थी जिसके साथ क्लब में जाने पर उसे अकेला पाकर अन्य कोई जोंक की तरह चिपट न जाय। इस घटना के पश्चात् किसी भी सहेली पर उसे विश्वास न रहा। उसे डर था कि जिस राकेश के कारण अमिता जैसी लड़की ने धोखा दे दिया, उस पर किसी और की राल टपक गई, तो लेने के देने पड़ जायेंगे!

भूपतलाल के हृदय में ईर्ष्या नाम की कोई वस्तु न थी। वे जानते थे कि वे फ़िरोज़ा के ऊपर एकाधिकार नहीं पा सकते। अतः किसी अन्य व्यक्ति के साथ उसका मेल-जोल या घनिष्ठता देख कर उन्हें दुःख नहीं होता था। उन्हें मालूम था कि फ़िरोज़ा का वास्तविक जीवन कैसा है।

फ़िरोज़ा ने अपनी योजना बनाते समय परिणाम की सम्भावनाओं की ओर ध्यान नहीं दिया था। वह तो केवल राकेश के यौवन-रस का उपभोग करना चाहती थी।

संध्या के समय अपने साथ भूपतलाल को लेकर जब वह क्लब पहुंची, तो उसे क्या मालूम था कि उसकी यह आकांक्षा राकेश के जीवन में एक चिनगारी का प्रवेश करके उसकी सारी सुख शान्ति को नष्ट कर देगी।

भाग्य की प्रवंचना ही तो थी कि वासना की साकार मूर्ति अमिता के हृदय में प्रेम का पावन अंकुर उत्पन्न हो गया और फ़िरोज़ा के मन

में नारी-सुलभ ईर्ष्या का। बेचारा राकेश दो पाट के बीच में पिस गया।

संध्या का धुंधलका बढ़ रहा था। अचानक राकेश की दृष्टि खुले हुए वातायन को पार कर सुदूर अन्धकारमय टिमटिमाते नक्षत्रों पर जा पड़ी। वह बैठा उन्हें निहारता रहा। सहसा उसे अन्धकारमय हृदयाकाश पर आशा के टिमटिमाते स्फुलिंग जगमगा उठे। उस ज्योति-पुंज के आलोक से विषाद का अन्धकार दूर हो गया।

सहसा आशा का संचार होते ही उसके मन में आया—मुझे साहस से काम लेना चाहिए। ऐसी दशा में अगर मैं धीरज छोड़ दूंगा, तो मेरा सर्वनाश निश्चित है।

इसी समय उसे एक बार फिर अपने गाँव के मास्टर साहब का कथन स्मरण हो आया। वे कहा करते थे—'कभी निराश मत हो। तुम्हारे पास शक्ति का अथाह-अनन्त कोष है। भगवान की दी हुई बुद्धि है, हाथ-पैर हैं। मुसीबत के क्षणों में, डूबने से बचने के लिए, बुद्धिमत्ता के साथ, तिनके का सहारा लेकर, सुनियोजित ढंग से हाथ-पैर चलाकर, किनारे पर पहुँचने की चेष्टा करना तुम्हारा सहज मानव-धर्म है।'

तभी उसने सोचा—एक असिता से ही तो सृष्टि का अन्त नहीं है। एक राह बन्द होने पर मैं दूसरी दिशा में प्रयास करूंगा। जीवन अमूल्य है। उसी की उन्नति, संवृद्धि और सफलता अपना मुख्य ध्येय है। यू न सही और सही।

सुरा के नशे और मन के उलझाव के कारण उसकी मनोदशा ऐसी न थी कि वह क्लब में प्रवेश करने वाले हर व्यक्ति की ओर ध्यान देता।

ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक था कि फ़िरोज़ा के साथ जब भूपतलाल ने प्रवेश किया तो उसने उधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया।

पर फ़िरोज़ा ने तुरन्त ही उसे देख लिया। बोतल के —

अकेले मेज पर बैठा हुआ देखकर वह समझ गई कि इस योजना में सेठ जी ने अपना योग पूरा कर दिया है। मानो साथ ही शराब की बोतल ने ही उसके कानों में चुपके से कह दिया हो, दाल में कुछ काला अवश्य है। तभी वह उसकी ओर बढ़ गई।

परन्तु भूपतलाल के मन में राकेश को देखकर एक भिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई। वह अफ़सर भी क्या, जिसे अफ़सरी का नशा न हो। यों तो वे बड़े लोकप्रिय व्यक्ति थे, किन्तु उनमें अन्य गुणों के साथ एक दोष भी था, वे अत्यन्त अनुशासन प्रिय थे। अपने से निम्न श्रेणी के कर्मचारी के ऊपर उनकी दया और ममता तभी तक रहती थी, जब तक वह अनुशासन की परिधि के अन्दर रहता था।

राकेश को क्लब में शराब पीता देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। एक वर्ष की छोटी अवधि में ही वे, उसकी कार्यक्षमता के कारण उस पर इतना विश्वास करने लगे थे, कि उसे ज़िम्मेदारी का कार्य-भार निःसंकोच सौंप देते थे।

उनके मन में ध्यान आया—यह व्यक्ति उनके साथ विश्वासघात कर सकता है। सम्भव है यह नाजायज़ तौर से पैसा पैदा करता हो। एक साधारण क्लर्क के पास क्लब में बैठ शराब पीने का पैसा कहाँ से आया!

इन विचारों के साथ जब वे फ़िरोज़ा के साथ राकेश की टेबुल पर पहुँचे तो उन्हें उस टेबुल पर बैठने में संकोच हुआ।

उधर राकेश भी उन्हें देखकर संकुचित हो उठा। पर उसके मन में आया—यह मिल तो है नहीं, यह तो क्लब है। यहाँ के समाज में सब बराबर हैं। उसे इस बात का भी ध्यान हो आया कि ऐसे ही अवसरों के द्वारा उनके साथ घनिष्ठता स्थापित की जाती है। अतः वह अपने नौकर-मालिक के रिश्ते को भूलकर बराबरी का व्यवहार कर बैठा।

फिरोज़ा ने समीप पहुंचते ही राकेश की पीठ पर अपनापन प्रदर्शित करते हुए एक धौल जमाई और कहा—"हैलो राकेश!"

कथन के साथ ही वह सामने की कुर्सी पर बैठ गई। राकेश के अधरों पर मुसकराहट फैल गई। उसके मन में आया कि अमिता भी आती ही होगी।

तभी उसकी दृष्टि भूपतलाल पर जा पड़ी। वह शिष्टाचारवश उठ खड़ा हुआ। फिर साहस करके उसने अपना हाथ उनकी ओर बढ़ा दिया।

अभिवादन के पश्चात् वह बोला—"बैठिये सर, यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप यहाँ पधारे। वैसे मैंने आपको यहाँ आज पहली बार देखा है।"

कथन के साथ ही उसने आगे बढ़कर उनके लिए कुर्सी सरका दी। जब वे बैठ गये तो उसने बैरे को दो गिलास और लाने का संकेत किया। अफसर की उपस्थिति मात्र से वह एकदम इतना आतंकित हो गया कि उसका ध्यान भूपतलाल के आग्नेय नेत्रों की ओर नहीं गया और न वह उनके मुख पर उत्पन्न इस भेंट की प्रतिक्रिया को ही पढ़ सका। वह एक क्षण में ही सुस्थिर हो गया और जैसे ही बेयरे ने खाली गिलास लाकर मेज पर रक्खा, उसने उसमें अपनी बोतल की सुरा भरना प्रारम्भ कर दिया। इस कार्य-कलाप का उसने मन-ही-मन इतना अध्ययन कर रक्खा था कि एकाएक कोई भी यह नहीं कह सकता था कि वह सभ्य समाज के उच्चतम वर्ग का सदस्य नहीं है। उसके ढंग से सहज लापरवाही टपकती थी। लगता था कि यह कोई विशेष या नवीन बात नहीं है। ऐसा तो नित्य ही होता रहता है।

किन्तु भूपतलाल इसके विपरीत उसके विगत जीवन से परिचित थे। नौकरी का आवेदनपत्र उनके समक्ष प्रस्तुत करते समय स्वयं राकेश ने उनकी भावना जगाने के लिए अपनी दयनीय स्थिति का वर्णन किया था। उन्हें प्रतीत हुआ कि मानो उनका निजी सेवक उनके साथ मेज पर बैठ कर उन्हें शराब पीने का निमन्त्रण देने की धृष्टता कर रहा है।

सहसा उनका अहं जाग उठा। किन्तु परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए उन्होंने निश्चय किया कि वे इस अपमान का प्रतिशोध अवश्य लेंगे। उन्हें प्रतीत हुआ कि क्लब में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति कह रहा है—देख लो यह है तुम्हारी स्थिति ! आखिर मिल में नौकर ही तो हो। जनरल मैनेजर होने से क्या होता है ! समझ लो, यही सही-सही तुम्हारा स्थान है, मालिकों के मध्य में नहीं। नौकरों को अपने वर्ग के साथ ही उठना-बैठना शोभा देता है। उनमें ऊँच-नीच का प्रश्न नहीं उठता।

तभी फिरोज़ा बोली—"आज आप बड़े गुमसुम नजर आते हैं। कोई साथी नहीं मिला। इससे तो अच्छा है दो-चार रबर ब्रिज ही हो जाय ; या कहो तो एकाध हाथ रमी ही बँट जाय।"

भूपतलाल शराब पी रहे थे। उन्हें फ़िरोज़ा की इस बात से भी बड़ी उलझन हुई। एक अदना व्यक्ति के साथ इस मेल-जोल, आत्मीयता के इस कृत्रिम प्रदर्शन ने उनके मर्मस्थल को छू लिया।

राकेश हँस कर बोला—"ऐसा कोई मिला ही नहीं, जिसके साथ खेलता ! इसीलिए अकेला बैठा था।"

फिरोज़ा ने उसकी आँखों से खेलते हुए कहा—"मैं तो आ गयी। मेरे साथ खेलिये न ?"

भूपतलाल को उसके इस साधारण से कथन के अन्दर छिपे हुए श्लेष का आभास जान पड़ा।

तभी राकेश बोला—"हम लोग तीन हैं। इसलिए रमी हो जाय।"

कथन के साथ उसने बेयरे को पुनः संकेत किया।

भूपतलाल का क्रोध अपनी सीमा तोड़ने के लिए प्रस्तुत था। वे सोचते थे मेरे व्यक्तित्व का यही मूल्य है ! मुझसे पूछा भी न जाय और समझ लिया जाय कि मैं भी खेलूंगा। और ऐसा व्यवहार वह करे जो मिल के कुशल मजदूर से भी कम वेतन भोगी क्लर्क हो।

अतः वे बोले—"मुझे एक आवश्यक कार्य से जाना है। मैं तुम्हारा साथ न दे सकूंगा।"

उन्होंने राकेश की अपेक्षा करते हुए सीधे फिरोजा को सम्बोधन किया था। इस भांति वह सिद्ध करना चाहते थे कि राकेश का मूल्य और महत्व उनकी दृष्टि में कुछ नहीं है।

फिरोजा तो राकेश को एकान्त में प्राप्त करने के लिए ही उन्हें साथ लेकर आयी थी। उसका काम पूरा हो चुका था। वह सोच रही थी कि अब शीघ्र ही उसे लेकर क्लब से चल देना चाहिए। वर्ना भीड़ बढ़ जायगी तो भय है कि अन्य कोई मगरमच्छ इस मछली को न निगल जाय!

अतः वह बोली—"अच्छी बात है। मिस्टर राकेश तो यहाँ मेरे पास हैं हीं। वैसे मुझे इनसे काम भी है।"

भूषनलाल उठ कर खड़े हो गये और निर्विकार भाव से केवल नमस्ते कहकर चल दिये।

उनके जाते ही फ़िरोज़ा सक्रिय हो उठी। अपनी योजना के अनुसार उसने धीरे से राकेश के कान में कह दिया—"मैं तुम्हारे पास एक खास काम से आई हूँ। कल रात कुछ गड़बड़ हो गई। अमिता ने तुम्हें बुलाया है। वह मेरे घर में बैठी तुम्हारा इन्तज़ार कर रही है।"

राकेश अपने उतावलेपन के कारण इसमें किसी षड़यंत्र की गन्ध न पा सका। वैसे भी कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति में कुछ नहीं भाँप पाता। फिर वह तो अमिता की प्रतीक्षा कर ही रहा था। गड़बड़ी की आशंका उसके मन में पहले से ही थी। ऐसा भी कहीं सम्भव है कि कोई किसी के घर में इस प्रकार जाकर लौट आये और किसी को पता न चले। अमिता के द्वारा इस प्रकार तुरन्त बुलाये जाने में उसे औचित्य दिखाई दिया। उसके मन में आया—विवाह सम्बन्धी जटिल मसला क्लब में बैठ कर कैसे हल किया जा सकता है!

वह भी तपाक से बोला—"अच्छा तो अब चला जाय।"

फिरोजा उठकर खड़ी हो गई और बोली—"हाँ, हमें चलना ही होगा।"

राकेश उठ कर खड़ा हो गया। फ़िरोज़ा का अनुसरण करते समय

उसे प्रतीत हुआ उसकी विजय हो चुकी !

क्लब से उठकर भूपतलाल सीधे फूलबाग में जाकर एक बेंच पर बैठ गये। उनका मन अपमान की चिता पर जल रहा था। जितना अधिक वे सोचते थे, उतना ही उनके अन्दर का प्रतिक्रियाशील दानव सशक्त होता जा रहा था। इस अंतद्वन्द्व में मानव पराजित हो गया। उन्होंने क्षुद्र मानवीय आवेश में पड़कर प्रतिशोध लेने में ही अपना गौरव समझा।

अब राकेश से तो अधिक फ़िरोज़ा पर उन्हें क्रोध आ रहा था। उसकी प्रकृति ही नहीं चरित्र से भी वे परिचित थे। उनकी समझ में ही न आता था कि उसे अगर उनके साथ सदा की भाँति रात्रि का कार्यक्रम नहीं बनाना था, तो उन्हें निमन्त्रण देकर बुलाने का अर्थ क्या था ?

उन्हें अपने ऊपर भी क्रोध आ गया। इसी फिरोजा के जाल में फँसकर केवल उसका निजी खर्च चलाने के लिए वह कितने ही उचित-अनुचित कार्य करता रहा।

उनकी बुद्धि ने कहा—नारी के सौन्दर्य के मोह में फँसना ही समस्त बुराईयों की जड़ है। बड़े-बड़े विनाशकारी काण्ड इन्हीं आसक्तियों के कारण हो जाते हैं। महाभारत—द्रोपदी के कारण; राम-रावण युद्ध—सीता के कारण और ट्रॉय का विनाश—हेलेन के कारण। प्रकारान्त से देखा जाय तो नारी ही वास्तव में हमारे जीवन की संचालिका है।

अपने पिछले अनुभवों के आधार पर भूपतलाल को फ़िरोज़ा की कार्य-प्रणाली का पूर्ण ज्ञान था। वे जानते थे कि वह राकेश को क्लब से बहका कर अपने शयन-कक्ष में ले जायगी। उनके मन में आज तक इस सम्बन्ध में कोई प्रतिक्रिया नहीं उत्पन्न हुई थी। पर आज इस विचार मात्र से उनका मन घृणा से भर उठा।

न जाने क्या सोच कर वे उठ खड़े हुए। उनकी कार ने जब फ़िरोज़ा के बंगले में प्रवेश किया तभी सहसा उनका ध्यान भंग हुआ। उन्होंने अपने बिखरे हुए विचारों को एकत्र किया। कार से उतर कर फ़िरोज़ा के कमरे की ओर चल दिये।

तभी एक अन्य संयोग ने जन्म ले लिया। फ़िरोज़ा के पिता नवाब रोशन खाँ भी अचानक अपने कमरे से बाहर निकले और धूमकेतु की भाँति भूपतलाल के सामने पड़ गये। एक ही शहर में रहने और शिकार में समान रुचि रखने के कारण, उन्हें एक-दूसरे से परिचित बना दिया था। अकसर ऐसे अवसर आ जाते, जब तीन-चार महीने में वे दोनों अपनी बन्दूकें लिए मुर्गाबियों की ताक में फिरते हुए सामने जा पहुँचते थे।

उन पर दृष्टि पड़ते ही नवाब साहब तपाक् से बोले—"अक़्ख़ा, तो जनाब भूपतलाल जी हैं। आइये साहब, फरमाइये आज इस ख़ादिम की याद कैसे आ गयी।"

कथन के साथ ही उन्होंने अपना हाथ उनकी ओर बढ़ा दिया, फिर उसी भाँति हाथ पकड़े हुए वे उन्हें अपने कमरे में लिवा गया, एक प्रकार से घसीट ले गये।

नवाब रोशन खाँ के पूर्वज किसी समय अवध के नवाबों के यहाँ साईस रहा करते थे। उन्हीं दिनों किसी बिगड़े दिल नवाब ने उनके किसी पूर्वजों को दो-चार गाँव इनाम में दिये थे। उसी आधार पर उनके वंशजों ने नवाबी मिटने के साथ अपने नाम के आगे नवाब जोड़ना प्रारम्भ कर दिया। उनके ख़ानदान में तब से किसी ने कोई ठोस काम न कर, केवल पतंग, बटेर में ही समय बिताया। अन्त में नवाब रोशन के बाबा ने अपनी जागीर वेश्या के कोठों पर लुटा दी, तो उनकी माँ उनको लेकर अपने पिता के यहाँ चली आयी। नवाब रोशन के पिता ने अपने ससुर के साझे में चमड़े का काम शुरू किया और अच्छा पैसा कमाया। यह कोठी उन्हीं के पसीने से खड़ी हुई थी।

किन्तु नवाब रोशन में अपने वंश का प्रभाव अधिक था। जीवन भर उन्होंने भी कुछ न किया। वे केवल पिता का धन उड़ाते रहे। उनमें कोई दुर्गुण न था। वे केवल चार आने भर अफ़ीम खाते थे, सो भी एक वक्त। इसके लिए उनको कभी पैसों की कमी नहीं हुई। जब तक पत्नी जीवित रही, गृह-प्रबन्ध उसी के हाथ में था, जब वह मरी तो उनकी अवस्था ऐसी न रही कि वे किसी व्यसन में फँसते। इसीलिए वे अपने जीवन में सुखी थे। फिरोज़ा के ऊपर उन्हें असीम प्रेम था। उसे वह अपनी मरहूम पत्नी की निशानी मानते थे। अपनी सामर्थ्य के अनुरूप उसे खर्च करने के लिए पैसे भी देते थे। लेकिन उनका ध्यान कभी उसकी कीमती साड़ियों, कपड़ों व गहनों की ओर नहीं जाता था और न कभी उन्होंने यह जानने की कोशिश की यह सब कहाँ और कैसे आता है।

दीवानखाने में पहुँच कर नवाब रोशन शालीनता के साथ बोले—"तशरीफ़ रखिये जनाब, और फ़रमाइये, कोई शिकार का प्रोग्राम बनाकर न्योता देने के लिए तकलीफ़ फरमायी हो तो समझ लीजिये क़बूल है। फ़रमाइये कब चलना है?"

कथन के साथ ही उनकी दृष्टि अपने आग्नेय अस्त्रों की अलमारी की ओर उठ गयी। जैसे उन्हें विश्वास था कि भूपतलाल शिकार का न्योता देने ही आये होंगे, क्योंकि इसके अतिरिक्त उनके यहाँ कोई कभी नहीं आता था।

उनका कथन सुनकर भूपतलाल को हँसी आ गयी। बाप शिकारी, बेटी भी शिकारी। और वे भी शिकार के लिए ही आये हैं।

वे कुछ गम्भीर होकर बोले—"जी हाँ, मैं शिकार के लिए ही हाज़िर हुआ हूँ।"

कथन के साथ ही उन्होंने नवाब साहब के निकट खिसक कर कुछ ऐसी मुद्रा बनाई कि जैसे किसी गूढ़ रहस्य को, गुप्त रीति से प्रकट करने जा रहे हों। बोले—"नवाब साहब, आप तो शिकारी हैं, लेकिन

आपको मालूम है कि आपकी साहबज़ादी को भी शिकार का शौक हो गया है ?"

नवाब रोशन चौंक पड़े, लेकिन इस वाक्य के अन्दर छिपा हुआ रहस्य उनकी समझ में न आया। वे बोले—"मैं कुछ समझा नहीं। वैसे शिकार का शौक़ ऐसा कुछ बुरा भी नहीं है। नये जमाने की लड़कियाँ कुछ भी कर सकती हैं। लेकिन फ़िरोज़ा को शौक था तो मुझसे कहती, मैं उसे अपने साथ ले जाता। वैसे भई, मैं तो लड़कियों को शिकार से दूर ही रखना पसन्द करता हूँ। ये कितनी नापाकूल बात है कि लड़कियाँ जंगलों में मारी-मारी फिरें !"

पहले भूपतलाल मुस्कराये फिर गम्भीर हो गये और बोले—"आप नहीं समझे। यह शिकार जंगल में नहीं, यहीं होता है; खूंखार दरिन्दों का नहीं बल्कि आदमियों का।"

नवाब रोशन ने लपक कर उनका गला पकड़ लिया और बोले—"मैं तेरा खून पी जाऊँगा।"

भूपतलाल ने अत्यन्त शालीनता के साथ कह दिया—"जरूर पी लीजिए। लेकिन किबला अपनी लड़की के बारे में पता तो लगा लें। एक बार कम-से-कम उससे पूछ तो लें—ये हीरे किसकी गरदन काट कर उसने अपने गले में पहन रखे हैं ? जवाहिरात कंकड़ पत्थर तो हैं नहीं कि राह चलते रास्ते से उठा लिये जाएँ। मैं दावे के साथ कहता हूँ कि अगर अभी आप उसके कमरे में जाने की तकलीफ़ गवारा करें, तो शायद फिर मुझे कुछ कहने की जरूरत न पड़े। शिकार और शिकारी दोनों ही आपको वहाँ मिल जायेंगे।"

नवाब रोशन क्षण भर यों ही उनके गिरहबान को अपने हाथ से पकड़े रहे। फिर वे एकाएक भूपतलाल को छोड़कर उठ खड़े हुए और बोले—"मैं गोली मार दूँगा उस हरामज़ादी की बच्ची को।"

कथन के साथ ही उन्होंने अलमारी खोली और अपनी दुनाली बन्दूक़ उठा ली। कारतूस की पेटी से कारतूस निकाल कर भरने लगे।

किन्तु भूपतलाल ने लपक कर उनका हाथ पकड़ लिया और उनके हाथ से कारतूस छीन लिया।

नवाब साहब ने किंचित् उच्च स्वर में कहा—"आप इस मामले में कुछ न बोलें। मैं दोनों को गोली मार दूंगा। चाहे फाँसी ही क्यों न हो जाय।"

भूपतलाल ने कारतूस पेटी में यथास्थान खोंस दिया और कहा—"गोली मारने से कुछ भी लाभ न होगा। आप बदनामी को रोक नहीं सकेंगे। खाली बन्दूक से डरा-धमका भले दीजिये। आखिर बच्ची है, लोगों के बहकावे में आ गयी होगी। फिर जवानी के आलम में किससे ग़लती नहीं होती। पर हाँ, अब उसकी शादी कर डालिये।"

फ़िरोजा को क्या मालूम था कि अमिता के लिए चली गई चाल से वह स्वयं ही मात खा जायगी !

नवाब साहब का चढ़ता हुआ पारा एकदम शून्य से भी नीचे जा गिरा। वे बोले—"ठीक है। वाक़ई में अगर वहाँ कोई और हुआ तो··· ?"

भूपतलाल मिल के मैनेजर थे और इस पद पर रहने वालों को प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने और तात्कालिक निर्णय करने की आदत होती है। वे झट से बोले—"अरे उसे चोरी के जुर्म में फँसा दीजिएगा। उधर वह जमानत पर छूटेगा और इधर आप मुँह बन्द करने का उससे कोई सौदा कर लीजिएगा। डर के मारे वह यों भी कुछ न कहेगा।"

नवाब रोशन बोले—"आप मेरे साथ तशरीफ़ ले चलें, वर्ना मैं गुस्से में सब कुछ भूल जाऊँगा। आप तो जानते ही हैं कि मैं आधा पागल हूँ।"

भूपतलाल बोले—"अच्छा चलिये, मैं भी चलता हूँ। अगर फ़िरोजा वापस नहीं आयी होगी, तो वहीं बैठकर इन्तजार कर लेंगे।"

नवाब रोशन ने कुछ उत्तर तो न दिया, किन्तु स्वीकारोक्तिस्वरूप

केवल सर हिला दिया। दोनों फ़िरोज़ा के कमरे की ओर बढ़ गये।

पीछे-पीछे चलते हुए भूपतलाल सोच रहे थे—इस स्थिति की कल्पना मैंने नहीं की थी।

एकान्त होते ही प्रतिमा ने लालाजी को अपने निकट आने का संकेत किया। लालाजी चुपचाप खड़े-खड़े बीते हुए दिनों की भयानक विभीषिका एवं उससे उत्पन्न परिणामों के विचार में लीन थे। उन्होंने बिना कुछ सोच-विचारे अंजना को दुखी देख कर उस समय यहीं रहने के लिए आश्वासन तो दे दिया, किन्तु अब पुन. उनके मन में सदैव की भाँति आशंकाओं का बवण्डर उठ खड़ा हुआ था।

वे सोच रहे थे—आज अचानक यह परिवर्तन कैसे हो गया! सुदूर अतीत में उन दिनों आज, जिनके स्मरणमात्र से, रोमांच हो जाता है, जो निश्चय उन्होंने किया था, उसे आज भूल कर, उसके विपरीत पग उठाना क्षेमस्कर होगा!

अंजना के सुख और प्रतिमा की मानसिक शान्ति के लिए आज तक अपने जिस वात्सल्य को पाषाण शिला से कुचल रखा था, वह अब पुन: जीवित हो गया।

आज प्रथम बार प्रतिमा के संकेत पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। अन्यथा उसके संकेतमात्र पर वे अपने को उत्सर्ग करने के लिए तत्पर हो जाते थे।

सहसा मन में एक आश्वासन की लहर उठी—सब ठीक हो जायगा। भगवान कितने दयालु हैं। जो भेद बीस वर्षों के लम्बे समय तक प्रकट न हुआ, वह मेरे साथ चिता की धधकती हुई अग्नि को भेंट होगा—अवश्य होगा।

मगर स्वयं विधाता को यह स्वीकार न होता तो ...

उसका यह प्रकोप भी न होता। अनायास राकेश से इस भाँति भेंट भी तो इसी बात की द्योतक है कि दुःख के दिन समाप्त हो गये।

रात के बाद प्रभात सुनिश्चित है, उसी प्रकार जैसे दुःख के बाद सुख। अवश्य ही मेरे सुखी होने का समय आ गया है।

किन्तु तभी प्रश्न उठा—जीवन में संध्या का धुँधलका छाने लगा है; फिर ज्वालामुखी शान्त भी हो जाय तो उसका क्या विश्वास ! कभी किसी क्षण भी विस्फोट हो सकता है, कभी भूकम्प भी आ सकता है। यह तो एक ऐसा रोग है जो सदैव कष्ट देता रहेगा। मृत्यु भी भी जिसकी सीमा नहीं है। यह तो मेरे बाद भी चिरंतन और शाश्वत सत्य की भाँति प्रलय तक जीवित रहेगा। इसका तो एक ही निदान है कि इसको समूल समाप्त कर दिया जाय। भेद को ही न रहने दिया जाय।

तो क्या मैं इसको प्रकट कर दूं ?

विचार मात्र से उनके प्राण काँप उठे। नहीं, जिसके लिए बीस वर्ष भट्टी में जलता रहा हूँ, लोगों के उपहास के लिए, उसको किस भाँति प्रकट करूँ। समय पर सक्रिय सहानुभूति आज के युग में कहाँ मिलती है !

अंजना के जिस सुख-सौख्य के लिए, यह उत्पीड़न आज तक भोगा है, उसी को नष्ट कर देना होगा। लेकिन आज ऐसा लगता है कि उसके जीवन को सुखमय बनाने के लिए सत्य की शरण लेना उचित है। वह सत्य जिसकी छाया में जीवन पलता है, जो संसार का, समाज का, इस सब के सौख्य का आधार है।

तभी प्रतिमा ने अपने रुग्ण किन्तु संगीतमय स्वर में कहा—"सुनो, यहाँ आओ।"

लाला हरचरणसिंह चैतन्य हो गये। आज इस स्वर में वही ऊष्मा थी, वैसा ही कम्पन था, जिसका चिन्तन उनको व्याकुल करता रहा है; मिलन के प्रथम क्षणों में सुनकर जिससे वे एकाएक संगीतमय हो उठे

थे। आज भी उनकी हृत्-तंत्री झनझना उठी, मन का मयूर वर्षा भरे बादलों को देख-देख कर नृत्य करने लगा। उन्हें लगा—वसन्त आ गया, दूर अमराई में कहीं कोयल बोल उठी।

वे लपक कर प्रतिमा के निकट जा पहुँचे और उसके नेत्रों में एक ज्योति देख उन्हें अभूतपूर्व सुख और शान्ति प्राप्त हुई, मानो अधीरता के साथ प्रतीक्षा करते हुए किसान को दूर क्षितिज पर वर्षा के लदे काले-काले बादलों की झलक दिखाई दे गयी हो।

भावना के आवेश में आकर वे पलँग पर बैठते-बैठते प्रेम-विह्वल हो गये, उन्होंने पत्नी के निस्तेज पतिवर्ण कपोलों को अपने हाथों खिले हुए कमल के सदृश ले लिया। सहसा प्रतिमा के मुख पर उषा की प्रथम किरण की भाँति तनिक-सी लालिमा का उदय हुआ।

तभी परम आह्लाद के साथ वे बोले—"अब तो तुम खुश हो। लो, आज मैंने तुम्हारी बात मान ली।"

प्रतिमा बोली—"लेकिन जी डरता है। कहीं ··।"

लालाजी दृढ़ स्वर मे बोले—"नही प्रमो, नहीं! डरने से काम नही चलेगा। आज तक हम लोग डरते रहे और कुछ भी नतीजा नहीं निकला। मौत की घाटी में रहते-रहते बीस बरस बीत गये।"

प्रतिमा ने अपने गालों पर रखे लालाजी के हाथों के ऊपर अपने हाथ रख लिए। एक निःश्वास दबी हुई सिसकी बनकर उसके कंठ से निकल गया और सीधे लालाजी के अन्तस्तल मे बाण की भाँति धँस गया।

वह बोली—"पता नहीं, क्या होनहार है?"

लालाजी झुके और हृदय की समस्त प्रेमानुभूति को अपने तृषित अधरों में संचित कर उन्होने एक प्रेम-चिह्न अपनी पत्नी के तप्त मस्तक पर अंकित कर दिया।

फिर सांत्वना देने के लिए उन्होंने कहा—"दो-चार दिन में ही मैं सब ठीक कर लूँगा। मैं पहले पूरा पता लगा लूँ। ...

सुन ले। अगर उसे पसन्द आ गया तो मैं इस सम्बन्ध को चरितार्थ करने में जान लड़ा दूंगा।"

किन्तु उन्हें स्वयं ही अपनी योजना पर विश्वास न था। कोई पग उठाने के पूर्व उसके परिणामों का चिन्तन वे प्राय: कर लेते थे।

अत: उन्होंने बात बदलने का निश्चय किया। हाथ हटाकर वे सामान्य स्थिति में बैठ गये और बोले—'तुमने दवा पी। देखो, मैं बलवन्त को बुलाता हूँ।"

उन्हें क्या पता था कि दवा की शीशी की एक छोटी गिलसिया लिए अंजना कितनी देर से परदे के पीछे खड़ी हुई, इस दृश्य को देख रही है। वह जानती थी कि इस चर्चा से प्रमुख सम्बन्ध उसी का है। अन्त में जब उसने अपना नाम सुना तो उसके मन में कौतूहल जाग उठा—मैं भी क्यों न देख-सुन लूं ?…किन्तु किसे ? तत्काल वह अपने पिता का अर्थ समझ गई। एकान्त में भी उसका मन आरक्त हो उठा। वय ने चुटकी ली, यौवन ने गुदगुदा दिया। आंचल से ढके वक्ष की ओर उसने दृष्टि डाली, फिर उसे और भली-भांति ढक लिया।

तदनंतर उसने पर्दा हटा कर कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—दवा का समय हो गया अम्मा, लो, चुपचाप पी लो। अभी मैं दलिया बनाकर लाती हूँ।"

गिलसिया में दवा की एक खुराक निकाल कर उसने प्रतिमा की ओर बढ़ा दिया। लालाजी ने सहारे से उसका सिर तकिये से तनिक ऊँचा उठाया और अंजना के हाथ से गिलसिया लेकर पत्नी के अधखुले मुँह में दवा डाल दी।

वह खाली गिलसिया हाथ में लेकर जैसे ही चलने को उद्यत हुई, वैसे ही लालाजी बोले—"मेरे लिए एक प्याला कॉफ़ी भी बना लेना।"

अंजना ने उत्तर में कहा—"अभी लाई पिताजी।" और वह अल्हड़ मृगी की भांति कूदती हुई कमरे के बाहर निकल गई।

दोनों पति-पत्नि मंत्र-मुग्ध हो उसे देखते रहे। तभी प्रतिमा ने

उनके हाथ को दबा दिया। उन्होंने घूम कर पत्नी की ओर देखा। प्रतिमा के नेत्रों से आँसू बह रहे थे, किन्तु वे सदा की भाँति पीड़ा के न थे।

एक पावन संतोष से उनका हृदय भर उठा।

फ़िरोज़ा के यहाँ से लौटकर सेठ मुरली मनोहर सीधे अमिता के कमरे में जा पहुँचे। वैसे यदा कदा ही वे अपने मकान के उस हिस्से में जाते थे। जब भी वे उधर से निकले थे तो उन्होंने उसका द्वार बन्द ही पाया था। कमरे के भीतर वे कई वर्षों से नहीं गये थे। उन्हें अपने धन्धों से ही फ़ुरसत नहीं थी। किन्तु जब उन्होंने अपनी आशा के विपरीत उसका द्वार खुला देखा, तो वे आश्चर्यचकित हो गये।

कमरे के अन्दर पग रखते ही उन्हें प्रतीत हुआ कि वे ऐसा स्वप्न देख रहे हैं, जिसमें सम्भव और असम्भव का अद्भुत समन्वय है।

चकित-विस्मित-दृष्टि से उन्होंने देखा कि अमिता सिर झुकाये, आँखें मूँद कर भगवान कृष्ण के चित्र के सम्मुख, प्रार्थना कर रही है।

वे झट वापस लौट गये और अपने कमरे में बैठ कर विचार मग्न हो गये।

अब प्रश्न उठा—क्या फ़िरोज़ा ने झूठ बोला?

—लेकिन जो दिखाई देता है वही वस्तुतः सत्य नहीं होता।

—फिर झूठ बोलने का क्या लाभ?

—कुछ न कुछ बात तो अवश्य होगी।

सेठ जी के मन में आया कि वे अपनी पत्नी मनोरमा से इस सम्बन्ध में बात करें। लेकिन पत्नी के साथ उनके सम्बन्ध अच्छे न थे। अपनी दुर्बलता के कारण उन्हें उसके साथ समझौता करना पड़ा था।

पत्नी के स्मरण मात्र ही उनके मन में घृणा का संचार हो उठा।

मन में आया—ऐसी माँ की संतान से यही आशा है। अपने ड्राइवर रामू के साथ मनोरमा को देख कर भी वे क्या कर सके थे ! अब तो वह रामू को एक उपपति के रूप में रक्खे हुए हैं।

वह अमिता का ही पक्ष लेगी ! चोर-चोर मौसेरे भाई।

लेकिन मैं अपने घर में अमिता के इस आचरण को पनपने न दूँगा। विवाह के बाद वह जाने और उसका पति। मेरे मत्थे पर तो कोई कलंक न लगेगा।

अच्छा, मनोरमा की भाँति उसके लिए भी, मैं कोई प्रबन्ध कर दूँ तो···? लेकिन फिरोज़ा तो कहती थी कि उसे नित्य नवीनता का रोग है। उफ़, अपनी पुत्री के लिए ऐसा प्रबन्ध करना कितना घृणित कार्य है !

पर यथार्थ का पता कैसे लगे। क्या उससे पूछना उचित होगा ?

तभी एक विचार उनके मन में आया। उन्होंने तुरन्त चम्पा को बुलाया। जब से चम्पा का विवाह हुआ था, वह इसी घर का नमक खा रही थी। बड़े-बड़े उतार-चढ़ाव उसने देखे थे। वेतन के अतिरिक्त सदैव उसे ऊपरी आय रही है। पहले तो बहुत अधिक थी क्योंकि सेठ जी के सात बहनें थी किन्तु वे सब उसके यौवन काल की बातें थीं। वृद्ध हो जाने पर भी उसे काफ़ी आमदनी हो जाती थी। उसके आगे-पीछे कोई न था। रुपयों की कमी न थी। लेकिन उसकी तृष्णा नहीं मिटी थी। कोठरी में कई कनस्तर विभिन्न आकार-प्रकार के नोटों से भरे होने पर भी, जब तक वह नित्य उनमें कुछ वृद्धि न कर लेती उसे चैन न मिलता, सर में भयंकर पीड़ा होने लगती। सेठ जी के पिता से तो कभी-कभी कुछ पा जाती थी। बुढ़ापे को सन्तुष्ट करने लायक रूप-यौवन तो उसके पास था, किन्तु सेठ मुरली मनोहर के चढ़ते यौवन को उसका शिथिल गात न लुभा सका, फिर वे अपने पिता की अमानत का भी विचार रखते थे।

जब वृद्ध चम्पा आकर उनके सम्मुख खड़ी हुई तो वे क्षण भर उसे

देखते रहे। एक विराट प्रदर्शन के साथ उन्होंने अपनी गंजी की जेब से तिजोरी की चाभी निकाली और समीप दीवार में चुनी हुई बड़ी-सी तिजोरी खोल दी। नोटों के मोटे-मोटे बण्डल निकाल कर वे बड़े मनोयोग से अपने सामने एकत्र करने लगे।

तभी उन्होंने फिर आँख उठाकर चम्पा की ओर देखा। वे उसकी तृष्णा से परिचित थे। उसे विस्फारित नेत्रों से नोटों की ओर ध्यानपूर्वक देखने की भंगिमा से वे समझ गये कि पृष्ठिभूमि का निर्माण हो गया है।

उन्होंने बिना किसी प्रकार की भूमिका बाँधे उससे प्रश्न किया—"मुँह बन्द रखने के लिए तुम्हें काफी रुपया मिलता है। फिर भी लो ·· और लो!"

कथन के साथ ही उन्होंने पहले एक गड्डी, फिर दूसरी उसके मुँह को लक्ष्य करके फेंक दी।

चम्पा अवाक् रह गई। इतने पर भी जब उसने उन्हें तीसरी गड्डी उठाते देखा, तो वह बोली—"मैं गूँगी नहीं हूँ।"

सेठ जी बोले— "हाँ मैं जानता हूँ। सच-सच बताओ मुझ से छिप कर कभी कोई घर में आता है।"

चम्पा ने धीरे से कहा—"हाँ।"

सेठ जी ने एक गड्डी और उठाकर उसकी ओर फेंकी और पूछा—"कौन आता है?"

चम्पा ने कहा—"यह मैं नहीं जानती।"

सेठ जी ने फिर एक गड्डी और उछाल दी और कहा—"किसके पास आता है?"

चम्पा ने अपने पैरों के पास जमीन में पड़ी हुई गड्डियों की ओर देखा और कहा—"कोई एक नहीं आता। बदल-बदल कर बिटिया रानी अपने साथ लाती हैं। लेकिन चाय पीकर सब चले जाते हैं। आप यहाँ पर होते हैं और बहूरानी तो·· आप जानते ही हैं। [illegible]ति में

ती हैं।"

कथन के साथ ही वह अपने पोपले मुंह को जरा दबा कर ही ··· ···करती हँस पड़ी। उसकी हँसी ने सेठ जी के मन में बम का-सा विस्फोट कर दिया। किन्तु उन्होंने कुशल व्यापारी का परिचय दिया। संयम की परिधि न लांघने दी।

शान्त स्वर में बोले—"नोट उठाओ।"

चम्पा की बांछें खिल गयीं। उसने झुक कर गड्डियां उठा लीं और जाने की मुद्रा में सेठ जी के आदेश की प्रतीक्षा करने लगी।

जब सेठ जी ने देखा कि उसने सब गड्डियां उठा ली हैं तो वे बोले—"इधर रख दो।"

चम्पा पर तुषारापात-सा हुआ। उसे जीवन में कभी ऐसी निराशा नहीं हुई थी। उसके मुख पर एक कुटिल मुसकान नृत्य कर उठी। उसने कहा—"यहां रख दूं।"

किन्तु उसने रक्खा नहीं।

सेठ जी बोले—"चम्पा, मैं सोचता हूँ कि तुम्हारी जुबान हमेशा के लिए बन्द कर दूं।"

कथन के साथ ही उन्होंने अपने अत्यन्त विश्वासी सेवक को आवाज़ दी—"कन्हई।"

यह कन्हई उनके निजी कक्ष के द्वार पर सदैव उपस्थित रहता था। वह परदा हटाकर झट अन्दर आ गया।

सेठ जी ने लक्ष्य किया कि चम्पा का मुख अज्ञात आशंका और डर से पीला पड़ गया है। वे बोले—"इस औरत की ज़ुबान बन्द करना है कन्हई। इसका गला काट दिया जाय या केवल जीभ काट लेने से काम चल जाएगा।"

चम्पा गिड़गिड़ाती हुई सेठ जी के क़दमों में झुक कर बोली— "दया करो बच्चा, मैं वादा करती हूँ कि मेरा मुंह बन्द रहेगा। बड़े नेः का ख्याल करो। मैं तुम्हारी मां के समान हूँ!"

कन्हई ने चम्पा की वकालत की। वह बोला—"जाने दीजिए सरकार, अब इसके मुँह से कुछ न निकलेगा।"

कन्हई का यह कथन उनकी आशा के विरुद्ध था। अब उनके समक्ष क्षमा करने के अतिरिक्त कोई अन्य चारा न था। प्रत्येक नौकर इस प्रकार के कार्य नहीं करते। उन्होंने एक मिनट तक उन दोनों को देखा और आयु के हिसाब से वे तुरन्त समझ गए। कन्हई के मनोभाव उसके नेत्रों में झलक रहे थे। अतः तो यह दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं।

सेठ जी बोले—"कन्हई, मैं जानता हूँ कि यह एक हिसाब से तुम्हारी औरत है। इसीलिए मैंने तुम्हें बुलाया भी, वर्ना मैं गुरु या किसी और के द्वारा इसे ठिकाने लगा देता। किसी को पता भी न लगता। पर चूँकि तुम मेरे खास आदमी हो और मैं तुम्हें दुखी नहीं देख सकता, इसीलिए मैंने ऐसा कुछ न कर के तुम्हें बुलाया है। तुम जमानत लो तो मैं इसे छोड़ दूँ।"

कन्हई अत्यन्त गम्भीर स्वर में बोला—"मैं वादा करता हूँ कि अब इसके मुँह से कुछ न निकलेगा। वैसे सावधानी के लिए मैं एक उपाय बताता हूँ। इसकी कोठरी में जितने कनस्तर हैं वे सब नोट और रेजगारी से भरे हैं। यही हम दोनों के जीवन भर की कमाई है। उसे आप अपने कब्जे में रख लें। बस, इसकी गरमी निकल जायगी। खाने को तो सरकार के यहाँ हम दोनों को मिलना ही है, मिट्टी ठिकाने लग ही जायगी। हमारे और कौन बैठा है जो पानी देगा। लेकिन सरकार याद रहे, मेरे जीने में भी एक भेद है।"

सेठ मुरली मनोहर कथन सुनकर तनिक गम्भीर हो गये। उन्हें कुछ ऐसा लगा कि शीतल हिमशिला से भी एक ज्वाला निकल रही है। एक सेवक के मुँह से ऐसी धमकी सुन कर अपमान से उनका हृदय जल उठा।

तभी कन्हई फिर बोला—"धोखा न हो जाय, इसलिए आप भी उसे जान लें तो अच्छा है। इसी में हम दोनों की भलाई है।"

से यह भेद मेरे सीने में छिपा है। बड़े-सेठ और सेठानी तो रहे नहीं। लेकिन मैं अभी भी प्रमाण दे सकता हूं।"

विरक्ति प्रदर्शित करते हुए सेठ जी बोले—"बोलो। आज मैं सब सुनने के लिए तैयार हूं।"

कन्हई बोला—"चम्पा तुझे वह जगह मालूम है जहां मैंने रुपयों का कलसा गाड़ा है; और उसी के नीचे प्रमाण भी गड़ा है।"

सेठ जी बोले—"जब मैं सबूत मांगू तो देना, तुम बात बहुत करते हो कन्हई, इसीलिए मैं तुम्हारा भी मुंह बन्द करने के फेर में हूं।"

कन्हई बोला—"अब हम दोनों के मुंह तो हमेशा के लिए बन्द हो गये। बस एक ही बात बतानी है, हम दोनों की ओर से आप अपनी आँख बन्द कर लें। सच पूछो तो आपके शरीर में मेरा ही खून है।"

सेठ जी पर मानो वज्रपात हो गया हो! एक पल मात्र के लिए उनके नेत्र मुंद गये। उन्होंने सदा अपनी माँ को देवी समझा और मन ही मन उनसे अत्यन्त स्नेह और प्रेम करते रहे। उनके देहान्त के बरसों बाद आज भी उनके मन में मां के प्रति वही भाव बने थे। अचानक संसार के ऊपर से उनका विश्वास उठ गया। अब उन्होंने निश्चय किया कि वे अपने वंश की बिगड़ी हुई परम्परा को सुधारेंगे।

अब सेठ जी बोले—"जरा अमिता को भेज दो।"

दोनों समझ गये कि साक्षात्कार का समय समाप्त हो गया।

अमिता जब कमरे में आई तो उसने देखा कि सेठ जी मसनद के सहारे आंख बन्द किये लेटे हैं। अमिता को पिता द्वारा बुलाये जाने पर आश्चर्य हुआ था किन्तु खुली तिजोरी और नोटों की गड्डियां देख कर उसका कौतूहल चरम सीमा पर जा पहुंचा।

वह बोली—"हां, पिता जी।"

सेठ जी ने बिना आंख खोले कह दिया—"बैठो।"

जब वह बैठ गई तो वह उठे और नोटों को पुनः तिजोरी में कैद करके चाभी को अपनी गंजी की जेब में रखने के पश्चात् उन्होंने पुकार

कर आदेश दिया—"कन्हई ! एक प्याला चाय !"

अमिता के लिए यह सब अप्रत्याशित था। घटनाओं की शृंखला कुछ इस भाँति उलझी हुई थी कि वह स्वयं कोई भी गुत्थी को सुलझाने में असमर्थ थी।

सेठ जी बोले—"देखो बेटा, झूठ बोलने से कोई लाभ नहीं। जिस राह पर तुम चल रही हो, वह मुझसे छिपी नहीं रही, सो अब मैंने निश्चय किया है कि तुम्हारा विवाह ही कर दूं। तुम सुन्दर सयानी हो, पढ़ी-लिखी हो, इसीलिए शादी के बाद तुम्हें सही रास्ते पर चलना है। उसी में सबका सुख है। अब तुम कभी क्लब न जाना। मैं सब कुछ ठीक कर दूंगा। किसी प्रकार की चिन्ता न करना। जाओ, अब आराम करो।"

अमिता को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी ने उसके शरीर का समस्त रक्त चूस लिया है। उसे ध्यान आया कि राकेश ने स्वयं विवाह का प्रस्ताव किया होगा। और क्लब में प्रथम मिलन से लेकर कल रात्रि तक का सम्पूर्ण विवरण बताया होगा। तभी तो पिता जी विवाह कर देने का निश्चय प्रकट कर रहे हैं। उसी ने क्लब में आज संध्या को होने वाली भेंट के सम्बन्ध में बताया होगा।

अन्य किसी की ओर अमिता का ध्यान भी नहीं गया। फिर इस घटना से वह फिरोज़ा को कैसे जोड़ती। वास्तव में यही उसकी मनोकामना थी, जिसकी सम्पूर्ति इतनी सरलता से होगी, उसने कभी सोचा न था।

जब उठ कर जाने लगी तो उसका हृदय अत्यन्त प्रसन्न था। उसे प्रतीत हुआ कि उसके हृदय पर रक्खा हुआ पत्थर अपने आप हट गया है। भविष्य की सुन्दर परिकल्पनाओं में कुलांचें भरती हुई जब वह कमरे से बाहर निकली तो उसे क्या पता था कि भविष्य तो अन्धकारमय गह्वर में उसे समेटे लिए जा रहा है।

वह बाहर निकली और कन्हई चाय का प्याला ह

में सफल हो गई। उस समय तक वह काफ़ी चैतन्य हो गया था। सुरा का प्रभाव तो उस पर था, किन्तु उसे मादकता में सुध-बुध की चेतना यथेष्ट थी।

आशा के विपरीत राकेश ने जब कमरे में अमिता को न देखा तो, उसे निराशा हुई और उसने फिरोज़ा से प्रश्न किया—"अमिता कहाँ है ?"

फिरोज़ा को उसकी मनोदशा पर आश्चर्य हुआ। वह अपने जीवन में इस प्रकार के व्यक्ति से पहले कभी नहीं मिली थी। उसका परिचय तो वासना के क्षुद्र, अति-क्षुद्र उन कीड़ों से था, जो सदा अपनी तृष्णा पूर्ण करने के फेर में रहते थे। उसे आशा थी कि एकान्त में पाकर राकेश स्वयं ही उसके ऊपर डोरे डालना प्रारम्भ करेगा, जैसा कि अन्य सभी व्यक्ति करते रहे हैं। उसने मन-ही-मन राकेश के चरित्र की प्रशंसा की, फिर यह भी सोचा—बड़ा अनाड़ी है !

वह कुछ मुस्करा कर बोली—"अमिता भी आ जायगी। यहाँ कितनी देर इन्तज़ार करती। उसे क्या मालूम था कि तुम इतनी जल्दी आ जाओगे। अभी फ़ोन करती हूँ।"

राकेश सोफ़े पर बैठ गया। उसने दृष्टि उठाकर कमरे का निरीक्षण प्रारम्भ कर दिया।

तभी फिरोज़ा ने कहा—"जब तक अमिता नहीं आती तुम्हें इन्तज़ार तो करना ही है। चाय का एक दौर हो जाय या तुम्हारे लिए एक पेग रम पेश करूँ।"

कथन के साथ ही वह उठ खड़ी हुई। अब वह उसको तीव्र दृष्टि से देखती हुई सोच रही थी कि अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए अब कौन सा पग उठाया जाय ?

राकेश बोला—"मैं शराब नहीं पीता, मेरा मतलब यह है कि मुझे उसकी आदत नहीं है। साथ-संग में पड़कर क्लब में थोड़ा पीना सीख लिया और आज अकेलेपन से घबड़ाकर मैंने सबकी देखा-देखी

आर्डर भी दे दिया। लेकिन तुमने ध्यान नहीं किया कि बोतल लगभग भरी ही थी, मैंने अधिक नहीं पी थी। मैं उसका सेवन अधिक कर ही नहीं सका। उस समय भी मैं सचेत था और इस समय भी मैं नशे में नहीं हूँ।"

वास्तव में उसे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि फ़िरोज़ा के इस कथन का अर्थ उसे शराबी सिद्ध करता है। मानव स्वभाव है कि वह अपने दुराचरण में भी औचित्य सिद्ध करके अपने दोष से मुक्ति पाने की चेष्टा करता है, इसमें उसे सफलता प्राप्त हो या न हो, कम से कम उसके हृदय में तत्काल उत्पन्न भ्रम की शान्ति तो स्थापित हो ही जाती है।

किन्तु उसका कथन सुन कर फ़िरोज़ा के मन में उसके प्रति कोई श्रद्धा नहीं उत्पन्न हुई। इसके विपरीत उसने सोचा अगर यह नशे में धुत होता तो उसे अधिक आसानी होती।

अब वह बोली—"मैं जानती हूँ कि तुम शराबी नहीं हो। मैंने तो इन्तज़ार की परेशानी को कम करने के लिए यह प्रस्ताव किया था।"

कथन के साथ ही वह उसके समीप सोफ़े पर बैठ गई और सधे हुए अभ्यास द्वारा उसने एक सुनियोजित ढंग से साड़ी का आँचल हटा कर अपने पुष्ट-मांसल वक्ष का निखिल सौन्दर्य, जिसका आभास लोकट ब्लाऊज की परिधि के झाँकते भाग से अनायास प्राप्त हो जाता था, राकेश के सम्मान में प्रस्तुत कर दिया।

ज्यों ही राकेश की दृष्टि उसके वक्ष-प्रान्त पर जा पड़ी, अचानक उसकी कल्पना ने उसका सूत्र विगत रात्रि से जोड़ दिया। उसके मन में एक आकांक्षा ने जन्म ले लिया। तभी उसकी दिग्भ्रमित दृष्टि वहाँ से हट कर दीवार के सहारे बिछे हुए पलँग पर जा पड़ी। मानस-पटल पर अमिता और उसका कमनीय कलेवर चित्रित हो गया। तथा उसके नासापुट तक में अमिता के तन की सुगन्ध बोलने लगी।

फिरोज़ा ने उसकी दृष्टि में उत्पन्न आकांक्षा की ज्योति-पुंज को देखा। उसे पलँग की ओर मग्न दृष्टि से देखते हुए वह अपनी सहज

भी समय न देना। गोली पहले मारता, बात बाद में करता।"

नवाब रोशन बोले—"अब आपने असली खानदानी आदमियों की सी बात की है।"

फिरोजा ने रोते हुए कहा—"माफ करो अब्बा मियाँ, आपको ग़लती हो गई है। असल में हम एक ड्रामे के रिहर्सल के आलम में थे।"

भूपतलाल दार्शनिक की भाँति बोले—"फिरोजा तो अभी बच्ची है। बच्चों से कोई भूल हो जाती है तो उसे गोली तो नहीं मार दी जाती। फिर यह भी मुमकिन है कि उसका कहना सही हो।"

नवाब रोशन के मस्तिष्क में एक नया विचार आया। वे बोले—"दोनों अपनी ग़लती मान कर, विवाह कर लें तो मैं उन्हें माफ कर सकता हूँ।" फिर राकेश की ओर उन्मुख होकर कहा—"ड्रामा मैं हमेशा असली खेलता रहा हूँ बरखुरदार।"

भूपतलाल को प्रतीत हुआ कि वे जीती हुई बाजी हार गये हैं। यह तो वे नहीं चाहते थे। उनकी इच्छा तो प्रतिशोध की थी। ऐसा प्रतिशोध जिसमें राकेश को कड़ी सजा मिले।

उन्होंने पैंतरा बदला और कहा—"मगर यह तो हिन्दू है।"

फिरोजा सोच रही थी—अब्बा मियाँ का प्रस्ताव कुछ ऐसा बुरा नहीं है। अगर इतनी अल्पमात्र सजा देकर उनको सन्तोष हो जाय, तो इस आफत से छुटकारा मिले। बाद में तो तलाक़ का रास्ता खुला ही है।

वह बोली—"मुझे मन्जूर है अब्बा मियाँ।"

कथन के साथ ही उसके मन में आया—वैसे भी मेरे लिए इससे अच्छा शौहर मिलना कठिन है।

अब राकेश सुस्थिर था। प्राणों का संकट मिटते ही उसकी प्रखर बुद्धि चैतन्य हो गई। उसे आभास हुआ कि यह एक सुनियोजित षड्यन्त्र है। नवाब साहब का आगमन भी उसी का एक अंग है।

नवाब साहब ने कहा—"मैनेजर साहब, इश्क जात-कजात नहीं

देखता। वैसे मेरा अकीदा तो यह है कि दो दिल आपस में मिलते हैं तो खुद-ब-खुद निकाह हो जाता है।

अब राकेश बोला—"आप लोगों को ग़लतफहमी हो गई है। यहाँ मैं अमिता से मिलने आया था। उसके साथ मेरा विवाह होने वाला है।"

भूपतलाल को क्रोध आ गया। वे बोले—"सेठ मुरली मनोहर की लड़की की शादी तुमसे होगी, एक मामूली क्लर्क के साथ, जिसके घर में दो वक्त का खाना भी नसीब नहीं है! झूठ बोलते हुए शर्म भी नहीं आती! एक शरीफ लड़की को बदनाम कर रहा है, आवारा कहीं का!"

नवाब साहब बोले—"वाक़ई बड़ा मक्कार आदमी मालूम होता है। इसी ने मेरी बेटी को बहकाया होगा।"

राकेश बोला—"आप विश्वास कीजिए मैं सच कहता हूँ।"

नवाब साहब कुछ संजीदगी से बोले—"हाथ कंगन को आरसी क्या! मैं अभी फ़ोन करके सेठ मुरली मनोहर से पूछ लेता हूँ।"

इतना सुनते ही वह तपाक् से बोला—"अभी सेठजी को कुछ नहीं मालूम है। यह बात तो हम दोनों के बीच··· ।"

उसका कथन पूर्ण भी न हुआ था कि नवाब साहब ने आगे बढ़कर उसके गाल पर एक चांटा जोर से जड़ दिया और वे सिहगर्जना के साथ बोले—"लड़कियों को बहका-फुसलाकर गुमराह करता है, लुच्चा कहीं का, बदमाश!"

फिर वे भूपतलाल की ओर घूम कर उनसे अपनी बन्दूक छीनने लगे और उसी भाँति उच्च-स्वर में बोले—"मैं गोली मार दूँगा। छोड़ो जी, बन्दूक छोड़ो। अपनी इज्जत पर डाका डालने वाले को मैं जिन्दा नहीं रहने दूँगा।"

भूपतलाल बोले—"मैं यह नहीं कहता कि आप डाकू को सज़ा न दें किन्तु ऐसा कुछ न करें कि आप खुद फंस जाएँ। जरा धीरज रखिये। आप पर मुकदमा चलेगा और उसके दौरान जो बदनामी होगी उसका

भी तो ख्याल रखें ! बेचारी फिरोजा के माथे पर जो कलंक लग जायगा। उसे आप कभी धो न पायेंगे।"

अब तक फिरोज़ा भी मानसिक रूप में पूर्ण स्वस्थ हो गई थी। डाकू और डाके के सन्दर्भ में उसे लूट के माल का ध्यान आया। सूत्र मिलते ही वह बोली—"अब्बा मियाँ, मैं कुरान शरीफ की कसम खाती हूँ कि मैं··· । आपने तो खुद ही देखा है कि हम लोग अलग-अलग थे, और असल में एक सीन की इमेज पर बहस कर रहे थे।"

नवाब साहब बोले—"मगर इस आदमी का भरोसा किया जाय ! बड़ी-गनीमत हुई-कि मैं आया, वर्ना यह तो जोर-जबर्दस्ती जरूर करता। फिर देखो-तो जरा, ये सेठ मुरली मनोहर की लड़की को भी बदनाम कर रहा है। इसको तो ऐसी सजा मिलनी चाहिए कि किसी की इज्जत पर डाका डालने वालों के लिए एक मिसाल कायम हो जाय। कौन कह सकता है कि कल यह मुझे बदनाम न करेगा।"

भूपतलाल ने उन्हें भड़काने के प्रयत्न से नवाब साहब की क्रोधाग्नि में आहुति डाली। वे बोले—"मैं तो सोचता हूँ कि यह लड़कियों से रुपये ऐंठता होगा। जरा सोचिये नवाब साहब, आज की महँगाई में जिसकी आमदनी डेढ़-दो सौ हो, वह क्लब में बैठ कर भला शराब पी सकता है ! मुश्किल से अभी साल भर इसे नौकरी करते हुआ है। काम माँगने आया था तो रोता था। अब रईस बन रहा है। इसे तो पुलिस में दे देना चाहिए।"

नवाब साहब चकित स्वर में बोले—"अच्छा, ये शराब पी रहा था ! ठीक है मैं अभी पुलिस को फोन करता हूँ। मगर फिर बदनामी...?"

भूपतलाल ने तुरन्त समाधान उपस्थित किया। वे बोले—'एफ० आई० आर० में यह लिखा देने से कि हम दोनो तो फाटक के सामने टहलते हुए शिकार का का प्रोग्राम बना रहे थे। इतने में आकर जरा-सा धक्का दे दिया और फिर ये झट से मेरा पर्स निकाल कर भागा तो हम

ोगों ने पकड़ लिया। मैं गवाही दे दूंगा। ऐसे आदमी को सजा मिलना जरूरी है।"

नवाब साहब की समझ में बात आ गयी। उन्होंने तुरन्त रमजान को बुलाया और थाने फोन करने का आदेश दिया।

राकेश अपनी सफाई में चिल्लाता रहा, किन्तु किसी ने न सुना। फिरोजा ने इसका प्रतिवाद तो किया किन्तु दबी जुबान से। वह अपने को इस आग की लपटों से दूर रखना चाहती थी।

जब नवाब साहब ने कमरे के बाहर चलने के लिए कहा, तो राकेश को एक क्षीण-सी आशा किरण दिखाई दी। उसने सोचा—अगर वह यहाँ से बाहर न निकले तो इन लोगों की योजना विफल हो जाय। अतः वह सोफ़े पर बैठ गया।

नवाब साहब भी कम चालक न थे। वे समझ गये कि वह बाहर क्यों नहीं जा रहा है। अतः उन्होंने भूपतलाल से कहा—"जरा हाथ लगाइए मेहरबान, इस हरामजादे को धक्का देकर लॉन में डाल ही दें।"

फलतः राकेश का मन उसके तन की अपेक्षा अधिक घायल हो चुका था। जब उसकी पीड़ा उसे सहन न हुई तो वह अचेत हो गया! उसे पता भी न चला कि उसे कब बाहर लॉन में पहुँचाया गया, कब पुलिस आयी और कब वह थाने पहुँचा दिया गया।

अचानक राकेश को ऐसा लगा कि कहीं दूर से कोई उसका नाम लेकर पुकार रहा है।

अब उसकी चेतना वापस आ रही थी। तन में पीड़ा की एक आ उठी और वह अर्ध-चेतनावस्था में कराहने लगा। उसी के साथ उ मस्तिष्क में भय उत्पन्न हो गया। उसे आभास हुआ कि अभी भी हा

में अपनी बन्दूक लिए नवाब साहब उसके सम्मुख खड़े हैं। उसने घबरा कर आँखें खोलीं। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह एक बेंच पर लेटा है और भाजी हुसैन पहले समीप मेज पर बैठा हुआ दरोगा किसी व्यक्ति से मन्द स्वर में कुछ बात कर रहा है। वह पीछे से उस व्यक्ति को नहीं पहचान पाया।

लेकिन उसके पास सोचने-विचारने का न तो समय था, न उसकी मनोदशा ही उस स्तर के अनुरूप थी। अपने को थाने में पाकर उसके मन में क्षोभ और अवसाद का एक अद्भुत समन्वय था। तन की पीड़ा भूल कर वह अपमान की ज्वाला में जल रहा था। उसके मन में आया —अब इस जीवन में क्या शेष रह गया है? अगर जेल में चक्की पीस कर वापस भी आ गया, तो उसे भविष्य में अपने समीप कौन आने देगा! मैं अपने कर्मों का फल पा रहा हूँ। नारी के रूप-जाल में फँस कर मैं विवेक खो बैठा। मैंने ऐसा पाप किया है कि सम्पूर्ण जीवन मैं रौरव नरक की भीषण अग्नि में जलता रहूँ तो भी मेरा प्रायश्चित अधूरा रहेगा। एक जन्म क्या, जन्म-जन्मांतर तक मैं प्रायश्चित करूँ, तो भी मेरा उद्धार नहीं होगा।

—लेकिन इस अपमान के कारण मेरे प्राण क्यों नहीं निकले? अगर मैं मर जाऊँ तो किसी से कम-से कम आँख न चुरानी पड़ेगी, ताने तो न सुनने पड़ेंगे।

—और पिताजी को मेरी इस दशा का जब पता चलेगा तो उनके ऊपर क्या बीतेगी! सारा गाँव कहेगा—"वाह पुजारी जी, अच्छा लड़का पैदा किया।"

उसने कल्पना में देखा कि वह जेल से वापस आया है। गाँव के नर-नारी के समूह में खड़ा है। सब व्यंगात्मक स्वर में उसकी ओर अंगुली उठा कर कह रहे हैं—आइये ब्रह्मचारी जी! हमें भी पादुका पूजा करने का अवसर दीजिए। एक-एक करके उसने उस समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति का मुख देखा। वे सब वही हैं जो एक समय उसकी

प्रशंसा करते थे और उसे गाँव समाज का आदर्श मानते थे। उसे लगा जैसे कोई उसके हृदय को अपने पैरों से कस कर कुचल रहा है, रौंद रहा है, मार रहा है !

उसके मुंह से एक आह प्रतिध्वनित हुई और वह चीख उठा—"नहीं···न···हीं !"

उसका स्वर सुनकर सब लोग उसकी ओर दौड़े। अब उसके आश्चर्य की सीमा न थी। उसके सम्मुख लाला हरचरण सिंह खड़े थे।

लाला जी ने उसके समीप जाकर उसके मस्तक पर हाथ रख दिया और अत्यन्त प्रेम से बोले—"मैं जानता हूँ। तुम ऐसा काम नहीं कर सकते। दरोगाजी की भी यही राय है। दुखी न हो, भगवान की बड़ी कृपा समझो, जो तुम्हारी जेब में यह परचा मौजूद था, जिस पर तुमने मेरा नाम और फ़ोन नम्बर लिख रखा था। अब सब ठीक हो जायेगा। अभी घर चलते हैं बादशाहो।"

कथन के साथ लाला हरचरण सिंह ने अपनी जेब में हाथ डाला, उसमें से पर्स निकाला। उसे खोलकर दस के पाँच नोट दरोग़ा जी की ओर बढ़ाते हुए उन्होंने कहा—"नवाब साहब को मैं समझा लूंगा। आप पर कोई भी आँच नहीं आने पायेगी। इसकी मिठाई मंगा कर सिपाहियों का मुँह मीठा करा दीजियेगा।"

कथन के साथ ही उन्होंने नोट मेज़ पर रख दिये। दरोग़ा जी ने जब नोटों की झलक देखी तो उनकी आँखों में एक चमक उत्पन्न हुई, किन्तु सिपाहियों का नाम सुनकर मुँह का स्वाद बिगड़ गया।

वे झट बोल उठे—"मगर वो मिल के मैनेजर साहब···!"

लाला हरचरण सिंह राजनीति से दूर अवश्य थे, किन्तु जीवन के पैंतरों की उखाड़-पछाड़ खूब समझते थे। अब उन्होंने सौ रुपये का एक नोट निकाला। उसे पूरा खोला, फिर उलटा-पलटा कर, यत्नपूर्वक बड़े मनोयोग से चौपरता तह लगा कर, उन्होंने उस नोट को दरोग़ा जी की जेब में अपने हाथ से धर दिया। उसके पश्चात् वे बोले—"आप बच्चों

के लिए मिठाई से लीजिएगा। रहा मिस्टर भूपतलाल का प्रश्न सो जब कोई रिपोर्ट ही नहीं होगी, तो कोई भी कुछ न कर सकेगा।"

सम्पूर्ण व्यापार को राकेश चुपचाप देख रहा था। उसके मन में आया—संसार में कुछ अच्छे और पुण्यात्मा व्यक्ति भी शेष हैं। और उन्हीं के पुण्य-प्रताप से यह पृथ्वी इस कलिकाल में भी स्थिर है अन्यथा अब तक रसातल में चली जाती।

फिर लालाजी जब उसे सहारा देकर अपनी कार की ओर ले चले, तो वह बोला—"लालाजी मेरे ऊपर आपने बड़ी कृपा की है। लेकिन अब मुझे जाने दीजिए। मेरी मनोदशा ठीक नहीं है। आज आप न होते तो पता नहीं मैं किस घाट उतरता। आपने कम-से-कम मुझे चोर नहीं समझा, इस बात को मैं अपनी अन्तिम घड़ी तक याद रखूँगा।"

भावना के उद्वेग से उसका कंठ अवरुद्ध हो गया और नेत्रों से जल की धार बह निकली।

लाला जी की आँखें भी गीली हो गयीं। उन्होंने उसे अपने वक्ष से लगा लिया और वे बोले—"इस घटना को भूल जाओ। इसके बारे में किसी से कभी बात मत करना। अब मेरे साथ चलो। वहीं पर सभी चीज का इन्तजाम हो जाएगा। अकेले दवा-दारू के लिए तुम कहाँ मारे-मारे फिरोगे। ज़िद नहीं अच्छी होती बादशाहो।"

विवश होकर लालाजी के साथ राकेश को जाना पड़ा। राह में केवल एक ही विचार था कि वह मिल की नौकरी छोड़ दे, क्योंकि वहाँ भूपतलाल से भेंट होने पर वे न जाने कौन-सा क़दम उठायें। अधिक नहीं तो सबके सामने चोर व गिरहकट सिद्ध करने में तो कोई कसर न उठा रखेंगे।

लालाजी रास्ते भर क्या कहते रहे, उस ओर उसका ध्यान न गया। और लालाजी ने भी गौर नहीं किया कि वह उनकी बातें नहीं सुन रहा है। उसने तो उनकी दृष्टि में अपने को आदर्श श्रोता पहले ही प्रमाणित कर दिया था।

जब अमिता अपने कमरे में पहुँची, उस समय उसके हृदय में एक विचित्र प्रकार का आनन्द था। उसने सोचा—आनन्द के इस रूप की ओर तो कभी मेरा ध्यान ही न गया था। आज तक मिलन की उत्कंठा एवं प्रतीक्षा के आनन्द से वंचित रही। आज पता चला कि विवाह से पूर्व लड़कियों के मन में अपने भावी पति के लिए अनजाने में क्या भाव उत्पन्न होते हैं।

अब उसे ध्यान आया कि यह कमरा, जिसे बचपन से मैंने अपना समझा, जहाँ के प्रत्येक कण में, मेरे सपनों की प्रतिछाया अंकित है, सदा के लिए छूट जाएगा। अब मेरा नवजीवन प्रारम्भ होगा। मैं वासना में लिप्त, झूठे भ्रम-जाल में फँसी, मृग-मरीचिका के पीछे भागती रही। पर वास्तविक सुखों के महल के द्वार पर राकेश ने ही मुझे पहुँचाया है। मुझे उसके अन्दर प्रवेश कर अपने सुख-संसार का निर्माण करना है।

—अच्छा, राकेश के परिवार में और कौन है! उसके बारे में तो मैं कुछ भी नहीं जानती। उसने अपने या अपने परिवार के सम्बन्ध में कभी कोई चर्चा नहीं की।—लेकिन मैंने पूछा ही कहाँ? पता नहीं उसकी माँ का स्वभाव कैसा है? उसके माता-पिता का मेरे प्रति व्यवहार कैसा होगा?

तभी ध्यान आया—उहूँ! मुझे संसार में किसी अन्य से क्या लेना देना है! आज के युग में नारी को अपना घर-संसार पृथक् बसाने की पूरी छूट है। लेकिन यह विचार मेरे मन में क्यों आया? इसका अर्थ तो यह हुआ कि मैं एक माँ से उसके पुत्र को अलग कर के, उनके बीच में दीवार बनकर खड़ी हो जाऊँ। इसमें तो किसी को सुख नहीं मिल सकता। यह परिवार का विघटन है। कल जब मेरा अपना परिवार होगा और अपने जिस पुत्र के लिए जीवन पर मैं अनन्त सुख की कामना करूँगी, जिसको देखकर मैं फूली-फूली फिरूँगी, खुशियाँ मनाऊँगी, परम सुखी होऊँगी, अगर वही मेरा पुत्र अपनी पत्नी के कारण मेरा परित्याग करे, मुझे भूल जाय, तो उस समय, वृद्धावस्था में मुझे कितना दुख

होगा !

नहीं ! मैं अपने व्यवहार से सिद्ध कर दूंगी कि मैं आदर्श पत्नी और आदर्श बहू हूँ ! राकेश के परिवार का प्रत्येक सदस्य मेरा अपना होगा । मैं अपने सास-ससुर को अपना माता-पिता समझूँगी, उनके भाई बहन मेरे भाई-बहन होंगे । राकेश तो मुझसे प्रेम करता ही है । मैं सभी से प्यार करूंगी तथा उन्हें प्रत्येक प्रकार के प्रतिदान के लिए विवश कर दूंगी ।

उसके कमरे में चम्पा ने जब प्रवेश किया, उस समय वह अपने विचारों में इस क़दर डूबी हुई थी कि उसने उसकी उत्तेजित अवस्था की ओर ध्यान न दिया । कुछ देर तक चम्पा यों ही बैठी रही । वृद्धावस्था में सभी की प्रवृत्ति धर्मोन्मुख हो जाती है । यौवन के मद में डूबा हुआ हृदय भोग और लिप्सा के यथार्थ का दर्शन करने के बाद, जब जीवन के वास्तविक मर्म को समझता है, तो उसके हृदय में पश्चाताप धधक उठता है । आज कन्हई ने उसकी जीवन रक्षा की थी । अब उसकी समझ में पूर्णरूप से आ गया था कि धन-संग्रह में कुछ गुण नहीं है । वैसे भी एक सीमा के बाद धन का महत्व कुछ नहीं रह जाता । उसने सोचा—"मैंने लालच में पड़ कर सदैव पाप किया है । मैं एक प्रकार से कुटनी का कार्य करती रही हूँ । कितनों के जीवन नष्ट किये हैं मैंने ! सदा मैंने विश्वासघात किया है, और अभी भी करती रही हूँ । मेरे भरोसे पर ही तो बड़े सेठ जी ने सबको छोड़ दिया था । मुझे आज भी याद है, उन्होंने कहा था—"देख चम्पा, ये घर तेरा है । लड़के-बच्चे सब तेरे हैं । आज से तू ही इनकी देख-भाल करेगी ।"

उस समय मेरे मन में आया था—यह माना कि ये मेरी कोख से नहीं जन्मे पर सौत के बच्चे भी तो अपने ही होते हैं ।

—पर न जाने कब मेरे मन में लालच पैदा हुआ । कलस्टर में एक के बाद एक नोटों का अम्बार जमाने लगी । उफ्, मेरे लालच ने एक के बाद सभी को कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा दी, जबकि मुझे उस

राह को सदैव के लिये बन्द कर देना था। लेकिन मैं तो उनकी सहायता करती रही। पैसे के लालच में उनका मार्ग-प्रशस्त करती रही। अभी तक वही कर रही हूँ। मैंने ही इस अमिता को भी प्रकारान्तर का मार्ग दिखाया है। पर मैं रक्षक की जगह भक्षक बन गयी। मैं नारी नहीं, पिशाचिनी हूँ। सच पूछो तो सद्गति तथा परलोक की ओर मेरी कभी दृष्टि ही नहीं गई।

—आज मेरे पाप का घड़ा भर गया। कन्हई पुण्य-प्रताप से प्राण-रक्षा हुई। सब कुछ जानते हुए भी सेठ जी ने मुझे ही यहाँ भेजा, मेरा विश्वास किया। अब मैं विश्वासघात नहीं करूँगी!

—कन्हई ने जो कुछ कहा, उससे तो अब मेरा दोहरा नाता स्थापित हो गया। अमिता मेरी अपनी पोत्री है। मैं उसे कुमार्ग पर न कभी चलने दूँगी। जिस जगह आँख खुले, वहीं सवेरा होता है।

उसके मन के उद्गार, उसकी आँखों में भादों की गरजनी-उफनती नदी की भांति उमड़ आये और उसकी उत्ताल-उन्मुक्त तरंगे बांध तोड़ कर, समस्त संसार को जल-प्लावन करने को व्याकुल हो उठी।

तभी सहसा चम्पा का ध्यान, फोन करने के लिये नम्बर घुमाती हुई अमिता की ओर चला गया। उसकी आत्मा ने ऐसी कुछ प्रेरणा दी कि वह उठी और उसने जाकर फ़ोन के यन्त्र पर हाथ रख दिया।

उसके इस कृत्य का अर्थ सहसा अमिता न समझ पायी उसके जीवन में यह प्रथम अवसर था, जब किसी ने ऐसा करने की धृष्टता की थी। अपने स्वभाव के अनुसार उसे क्रोध आ गया। उसने दृष्टि उठा कर चम्पा की ओर देखा। किन्तु उसके मुख पर अनजाने, नितान्त अपरिचित भावों का विकल नृत्य देख कर स्तब्ध अवाक् रह गयी।

चम्पा ने उसके नेत्रों में छिपे विस्मय और मूक प्रश्न को देखा और समझा। वह पहले कभी ऐसा करने का विचार भी नहीं कर सकती थी। किन्तु आज स्थिति कुछ भिन्न थी। पहले वह एक सामान्य नौकरानी थी, किन्तु इस समय वह एक जागरूक नारी थी—जो माँ थी,

दादी थी। अब वह लालची नहीं थी। अब था वात्सल्य, सन्तान के प्रति मोह, उसकी भलाई की कामना, उसके हित में प्राण उत्सर्ग कर देने की ललक।

स्नेह के साथ, भावना से ओत्-प्रोत् वाणी में चम्पा बोली—"देखो बेटा, मैं तुम्हारी दादी के बराबर हूँ। मेरे कहे का बुरा न मानना। वैसे चाहे जो तुम समझो और करो, मैं मना नहीं करती। तुम खुद समझदार हो।"

अमिता ने जरा-सा मुसकराते हुए कहा—"मैंने भी तो तुमको सदा यही समझा है। बचपन से लेकर आज तक जब भी कोई कष्ट हुआ, मैं तुम्हारे पास ही तो दौड़ी हूँ। मगर बात क्या है? तुम बहुत परेशान मालूम होती हो। मुझे बताओ, मैं उसे दूर करने की कोशिश करूंगी।"

अब चम्पा के लोम-लोम से गम्भीरता प्रस्फुटित हो रही थी। वह बोली—"बेटी, जीवन में सुख सभी चाहते हैं। लेकिन नारी को सच्चा सुख अपने मन के भीतर की बाँहों में मिलता है। रोज नये-नये आदमी के साथ रात बिताने से मन को सुख नहीं मिलता, तन को भले ही मिल जाय। लेकिन जवानी के साथ ये तन के साथी भी छूट जाते हैं। अपनी गिरिस्ती में, अपने आदमी के प्यार में जो सुख मिलता है, उसके आगे धन-दौलत कुछ भी नहीं है।"

अमिता के मन में आया कि वह कह दे—यही तो मेरा भी विचार है। उसने चम्पा की अधूरी बात काट कर बीच में अपनी बात कहने के लिये जैसे ही मुँह खोला कि चम्पा ने उसे चुप रहने का संकेत कर दिया।

चम्पा दाँये से बायें और इधर से उधर सर हिलाती हुई बोलती ही रही—"नहीं, बीच में मुझे टोको मत। आज मैं पूरी बात कहूँगी। जिस रास्ते पर तुम चल रही हो वह गलत है। पाप करने से सुख नहीं मिलता, पापी को तो नरक की आग में जलना होता है। तुम्हारी कोई

बात अब मैं नहीं मानूंगी। कान खोल कर सुन लो—आज से कोई भी लड़का चाय पीने के लिए तुम्हारे कमरे में न आये। अगर किसी को तुम लायीं, तो मैं उसके हाथों पर चाय के पैसे धर कर, उसे बाहर से भगा दूंगी। शायद तुम्हें मालूम नहीं कि सेठजी को भी इन बातों का पता है।"

अमिता बोली—"मुझे मालूम है। तू फ़िकर न कर। अब कोई भी इस कमरे में नहीं आयेगा। अगर कोई आया भी तो वह मेरी मांग में सेन्दूर भरने के बाद ही आयेगा।"

भावना के आवेग में विकल चम्पा ने अमिता को अपने सीने से लगा लिया। उसे भान हुआ कि वह अपनी पौत्री को विवाह के पश्चात विदा कर रही है। उसके नेत्रों से आंसू टपकने लगे।

तब हर्ष-विह्वल होकर अमिता बोली—"कल जो आये थे मिस्टर··· अरे वही जिनके लिए तू चाय के साथ नमकीन मठरी लायी थी, उनको पिता जी ने पसन्द किया है। सच बताना, तुम्हें कैसे लगे।"

लज्जा से अमिता का मुख लाल हो उठा। राकेश का नाम उसके कंठ से न निकला। वह आयु का भेद भूल गयी और चम्पा से सखी की भांति बातें करने लगी।

भाग्य की प्रवंचना! अमिता ने राकेश को मन ही मन पति के रूप में मान लिया। पिता के संकेत से मिथ्या अर्थ लगा कर वह भ्रम में पड़ गयी। फलतः उसने अपने जीवन में ऐसा विष घोल लिया। जिससे उसे जीवन भर व्यथित, पीड़ित और कुंठित रहने की आशंका सदा पीड़ा पहुंचाती रही।

लाला हरचरण सिंह के बंगले में पहुंचने पर जब राकेश कार से उतरा तो निकट से सितार के मन्द स्वरों की प्राणमयी झंकारें आकर

उसके कानों में सुधा-वर्षण करने लगीं। वह वहीं दालान में एक खम्बे के सहारे खड़ा हो गया। उसे प्रतीत हुआ, आशा के स्वर मानो साकार हो उठे हैं। हृतंत्री झंकृत हो उठी।

उसकी दृष्टि अनायास सामने लॉन पर जा पड़ी, जहाँ माली ने अपने कुशल हाथों से प्रकृति-नटी को बड़े उत्साह से सजाया-संवारा था। उसे लगा कि वे छोटे-छोटे फूलों से लदे पौधे नटखट बालकों का समूह है जो यहाँ चाँदनी रात में खेलने-कूदने के लिये अपने-अपने घरों से चुपके से भाग आये हैं।

उसे अपने बचपन का स्मरण हो आया। गाँव के वे प्यारे सलोने मीठे दिन। तब उसके मन में कोई पीड़ा न थी, किसी वस्तु की कामना न थी। दूर-दूर तक फैले हुए सरसों के पीले खेत देख कर मन में केवल एक बात आती थी कि वह भी पीत-वस्त्र पहन कर योंही लहरा उठे।

अब वह सोचने लगा—मुझ में यह परिवर्तन कैसे आ गया? संसार में कुछ भी नहीं बदला। सब कुछ वैसा ही है। प्रकृति नहीं बदली, लेकिन मेरा विवेक कैसे बदल गया?

—शुरू में ही ठोकर लग गई। पता नहीं मैं मंज़िल तक किस भाँति पहुँचूँगा?

—प्रारम्भ में कुछ सफलता प्राप्त होती तो आशा बनती कि मैं अपने अभियान में सफल हो जाऊँगा।

—मुझे अपनी भूल सुधारना होगा। एक बार ग़लती होना स्वाभाविक है, किन्तु उसकी पुनरावृत्ति दोष है। वह किसी भाँति क्षम्य नहीं।

उसने निश्चय किया कि वह अपने पथ को बदल देगा। तूफ़ान और बवंडर में बड़े-बड़े पेड़ समूल उखड़ जाते हैं। लेकिन कोमल लता पर कोई असर नहीं होता। उसका हृदय बोला—तुम झूठी शान में मत

तूफ़ान का सामना करो। सफलता स्वयं तुमको गले लगा लेगी।

उसका हृदय-कमल खिल गया। सारी पीड़ा, समस्त अवसाद दूर हो गये। उसे अमिता का स्मरण आया। एक सुवास से उसका मन-प्रान्त भर गया।

उसने दिवा-स्वप्न-सा देखा—वह एक पहाड़ की ढलान पर लड़-खड़ा कर गिर गया है। अनन्त कठिनाई से साथ उठ कर खड़ा हुआ है। अभी भी उसका क्षत-विक्षत शरीर स्थिर नहीं है, वह डगमगा रहा है। एक ओर असफलता का असीम गह्वर है और दूसरी ओर सफलता का उत्तुंग शिखर।

अब उसके मन में आया कि कहीं उसे दिशा भ्रम न हो जाय। इसी स्थल से सफलता की राह भी है और असफलता की भी।

उसकी आत्मा चीख उठी और वह बोली—मार्ग की कठिनाइयों से न डरो राकेश! साहस के साथ परिस्थिति से लड़ो और उन्हें अपने अनुकूल बना लो।

सहारे के लिये उसके कन्धे पर हाथ रक्खे लाला हरचरण सिंह भी उसके थमते ही रुक गये थे। वे समझे कि वह अपने पाँवों की यन्त्रणा के कारण चलने में कठिनाई का अनुभव कर रहा है और दम लेने के लिये रुक गया है। वे भी उसी के साथ रुक गये थे। अब वे बोले—"चलो बेटा, अन्दर चलो, डरो नहीं, किसी को कुछ नहीं मालूम पड़ेगा। तुम अपने घर में पहुँच गये हो। यहाँ किसी बात का खौफ़ नहीं बादशाहो।"

उनके सहारे धीरे-धीरे राकेश ड्राँइंग रूम की ओर बढ़ा। वे बड़बड़ाते रहे—"मैं हर एक से बहला लूँगा। फ़िकर न करो। अभी डाक्टर आयेगा। पट्टी बाँध देगा। तुम देखोगे कि एक ही गोली में सारा दर्द दूर हो जायगा बादशाहो।"

राकेश चौंक गया। गोली!...हाँ एक गोली में सब दर्द दूर हो जाता। मगर मेरे सीने में वह नहीं धँसी। नवाब साहब ने कुछ न कह

कर गोली मार दी होती तो कितना अच्छा होता !

परन्तु यह स्वर-लहरी जो ईश्वर का सन्देश सुना रही है, वह कैसे सुनता !

वह सोफ़े पर लेट गया। शनैः-शनैः वह अपनी पीड़ा, अपमान, वातावरण सभी कुछ भूल गया। यहाँ तक कि वह अपने को भी भूल गया और आत्मविभोर हो सम्पूर्ण तन्मयता के साथ स्वर्गीय संगीत सुनता रहा। लाला जी उसकी परिचर्या के लिए साधन एकत्र करते रहे और वह सो गया। कब, कैसे और क्यों—इसका ज्ञान उसे न हो सका।

अब चम्पा आत्ममग्न थी। अमिता स्वयं सेठजी से मिल कर आयी थी, इसी कारण वह भी समझी कि इसे अपने मन का मीत मिल गया है। इस बीच अमिता अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में ही बातें करती रही। उसने न तो बाहर जाने की कोई इच्छा प्रकट की और न वह टेलीफोन के पास ही गयी।

उन दोनों को सेठजी की योजना का रंचमात्र भी आभास न था। उधर अपने कमरे में सेठजी अपने धन एवं परिवार को इस विग्रह से मुक्त करने के साधन ढूँढ़ने में व्यस्त थे। एकाएक उन्होंने अपनी पत्नी मनोरमा को बुलाया। उसके आते ही उन्होंने अपने हृदय को उसके सम्मुख निरावरण रूप में रख दिया। बोले—"अपनी तो अन्तिम वेला है मनो, जिस भाँति कटनी थी, कट गई। लेकिन अब एक समस्या उत्पन्न हो गयी। अमिता विवाह योग्य हो गई है। उसके विषय में भी कुछ सोचा है?"

मनोरमा को ऐसा भान हुआ कि वह अपने प्रारम्भिक जीवन में आ गयी। जब ये दोनों उसी भाँति बैठ कर प्यार की बातें करते थे। एक दूसरे से लड़ते, रूठते और मनुहारें करते। उसे याद आया कि बहुत दिनों के बाद आज सेठजी ने उसे 'मनो' कहा है।

तूफ़ान का सामना करो। सफलता स्वयं तुमको गले लगा लेगी।

उसका हृदय-कमल खिल गया। सारी पीड़ा, समस्त अवसाद दूर हो गये। उसे अमिता का स्मरण आया। एक सुवास से उसका मन-प्रान्त भर गया।

उसने दिवा-स्वप्न-सा देखा—वह एक पहाड़ की ढलान पर लड़खड़ा कर गिर गया है। अनन्त कठिनाई से साथ उठ कर खड़ा हुआ है। अभी भी उसका क्षत-विक्षत शरीर स्थिर नहीं है, वह डगमगा रहा है। एक ओर असफलता का असीम गह्वर है और दूसरी ओर सफलता का उत्तुंग शिखर।

अब उसके मन में आया कि कहीं उसे दिशा भ्रम न हो जाय। इसी स्थल से सफलता की राह भी है और असफलता की भी।

उसकी आत्मा चीख उठी और वह बोली—मार्ग की कठिनाइयों से न डरो राकेश! साहस के साथ परिस्थिति से लड़ो और उन्हें अपने अनुकूल बना लो।

सहारे के लिये उसके कन्धे पर हाथ रक्खे लाला हरचरण सिंह भी उसके थमते ही रुक गये थे। वे समझे कि वह अपने पाँवों की यन्त्रणा के कारण चलने में कठिनाई का अनुभव कर रहा है और दम लेने के लिये रुक गया है। वे भी उसी के साथ रुक गये थे। अब वे बोले—"चलो बेटा, अन्दर चलो, डरो नहीं, किसी को कुछ नहीं मालूम पड़ेगा। तुम अपने घर में पहुँच गये हो। यहाँ किसी बात का खौफ़ नहीं बादशाहो।"

उनके सहारे धीरे-धीरे राकेश ड्राइंग रूम की ओर बढ़ा। वे बड़बड़ाते रहे—"मैं हर एक से बहला लूँगा। फ़िकर न करो। अभी डाक्टर आयेगा। पट्टी बाँध देगा। तुम देखोगे कि एक ही गोली में सारा दर्द दूर हो जायगा बादशाहो।"

राकेश चौंक गया। गोली!...हाँ एक गोली में सब दर्द दूर हो जाता। मगर मेरे सीने में वह नहीं धँसी। नवाब साहब ने कुछ न कह

कर गोली मार दी होती तो कितना अच्छा होता !

परन्तु यह स्वर-लहरी जो ईश्वर का सन्देश सुना रही है, वह कैसे सुनता !

वह सोफ़े पर लेट गया । शनैः-शनैः वह अपनी पीड़ा, अपमान, वातावरण सभी कुछ भूल गया । यहाँ तक कि वह अपने को भी भूल गया और आत्मविभोर हो सम्पूर्ण तन्मयता के साथ स्वर्गीय संगीत सुनता रहा । लाला जी उसकी परिचर्या के लिए साधन एकत्र करते रहे और वह सो गया । कब, कैसे और क्यों—इसका ज्ञान उसे न हो सका ।

अब चम्पा आश्वस्त थी । अमिता स्वयं सेठजी से मिल कर आयी थी, इसी कारण वह भी समझी कि इसे अपने मन का मीत मिल गया है । इस बीच अमिता अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में ही बातें करती रही । उसने न तो बाहर जाने की कोई इच्छा प्रकट की और न वह टैलीफोन के पास ही गयी ।

उन दोनों को सेठजी की योजना का रंचमात्र भी आभास न था । उधर अपने कमरे में सेठजी अपने वंश एवं परिवार को इस विग्रह से मुक्त करने के साधन ढूँढने में व्यस्त थे । एकाएक उन्होंने अपनी पत्नी मनोरमा को बुलाया । उसके आते ही उन्होंने अपने हृदय को उसके सम्मुख निरावरण रूप में रख दिया । बोले—"अपनी तो अन्तिम बेला है मनो, जिस भाँति कटनी थी, कट गई । लेकिन अब एक समस्या उत्पन्न हो गयी । अमिता विवाह योग्य हो गई है । उसके विषय में भी कुछ सोचा है ?"

मनोरमा को ऐसा भान हुआ कि वह अपने प्रारम्भिक जीवन में आ गयी जब वे दोनों उसी भाँति बैठ कर प्यार की बातें करते थे । एक दूसरे से लड़ते, रूठते और मनुहारें करते । उसे याद आया कि बहुत दिनों के बाद आज सेठजी ने उसे 'मनो' कहा है ।

अधरों पर उल्लसित हास बिखेर कर वह बोली—"तुमने मेरे मुँह की बात छीन ली। कोई लड़का देखा है?"

सेठजी बोले—"नहीं!"

मनोरमा बोली—"तो ढूँढ़ना शुरू करो। अच्छा वर पेड़ की डाल पर तो उगता नहीं। साल-दो साल भटकना पड़ेगा। वैसे अभी जल्दी नहीं है।"

सेठजी बोले—"तुम नहीं समझोगी मनो। जल्दी है और बहुत जल्दी है।"

मनोरमा बोली—"क्या कहते हो, जी? मैं कुछ समझी नहीं।"

सेठजी ने उसके हाथ पर अपना हाथ रख दिया। मन गंगा के दो किनारों का मिलन-सेतु बन गया। वे बोले—"मेरी उच्छृंखल प्रवृतियाँ मुझे उसमें प्रस्फुटित होना चाहती हैं। तुम मुझे हमेशा समझाती रहीं और मैं अपना मुंह काला करता रहा। जानती हो कल रात को एक लड़का उसके कमरे में आया था। मैं जानता हूँ कि भगवान, मुझे मेरे कर्मों का फल दे रहे हैं। अगर कुछ गड़-बड़ हो गया, तो हम दोनों किसी को अपना काला मुँह ..?

उन्होंने वाक्य को अधर में लटकता छोड़ दिया।

सेठजी ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक अमिता के कृत्यों के लिए अपने को दोष दिया था। मनोरमा को लज्जा की अनुभूति हुई। उसे प्रतीत हुआ कि यह सेठजी की प्रवृत्तियों का नहीं, बल्कि उसके दुराचरण का परिणाम है। माँ होकर जो आदर्श उसने अपने घर में स्थापित किया है उसी का अनुसरण आज उसकी पुत्री कर रही है। इस अनर्थ की जड़ तो मैं हूँ। मैं उसकी माँ ..!"

सफल व्यापारी होने के नाते सेठजी का उसके मनोभावों को आभास अनायास मिल गया।

अब वे बोले—"जहर खाने से भी छुटकारा नहीं मिलेगा। बेचारी अमिता को जीवन भर अपने पाप की गठरी ढोनी पड़ेगी। कुछ समझ

में नहीं आता, क्या करूँ ?"

मनोरमा के हृदय में मातृत्व ने करवट ली। वह व्यथा भरी आद्रवाणी में बोली—"नहीं! कुछ तो करना ही पड़ेगा। उसकी जिन्दगी खराब हो जायगी।"

अब सेठ जी ने अपना अमोघ अस्त्र चला दिया। वे बोले—"इसी लिए तो तुम्हें बुलाया है। तुम तो जानती हो कि आज के युग में गर्भ-पात का प्रबन्ध आसानी से हो जाता है। पैसे से नर्स डाक्टर सभी सहायतायें मिल जाते हैं।"

कथन के साथ ही उन्होंने एक बार पुनः गंजी की जेब से तिजोरी की चाबी निकाली और उसे मनोरमा की गोद में डाल दिया। परि-स्थिति की गम्भीरता से वह स्वयं परेशान थी। उनके इस कृत्य का कुछ अर्थ उसकी समझ में नहीं आया।

अब सेठजी ने उसकी आखों में झांकते हुए कहा—"अब सब तुम सम्हालो। मैं तो गंगा की गोद में जा रहा हूँ। अब तो मरने के बाद ही शान्ति मिलेगी।"

कथन के साथ ही वे 'हरिओरेम्' कहकर उठ खड़े हुए और कोट पहनते हुए बोले—"मुझे माफ करना मनो, मैं तुम्हें इस मुसीबत में अकेला छोड़ कर जा रहा हूँ।"

स्थिति की गम्भीरता एवं परिणाम से युद्ध करने का साहस तो मनोरमा शायद एक बार करती भी, किन्तु स्वामी को आत्मघात के लिए जाता देखकर वह छिन्न भिन्न हो गयी।

उसने सेठजी का पैर पकड़ लिया और कहा—"मैं तुम्हें मरने नहीं दूँगी। विश्वास करो सब ठीक हो जायगा।"

"कैसे ?" सेठ का प्रश्न था।

वह बोली—"हम लोग आज ही गाँव चलें। वहाँ किसी तरह से जल्दी-जल्दी इसका ब्याह कर दें।"

"मगर लड़का ..?" सेठजी के स्वर से आभास होता था कि उन्होंने

अपने व्यक्तित्व को भूल कर मनोरमा का नेतृत्व स्वीकार कर लिया है।

मनोरमा बोली—"मैं बताती हूँ। पहले तुम बैठो तो!"

सेठजी बैठ गये तो उसने चाभी को उनकी जेब में रख दिया, फिर कहा—"मेरी राय में वहाँ कोई न कोई लड़का मिल जायगा। वैसे छंगू लाला का मँझला लड़का भी अच्छा है।"

"यह सब बाद की बातें हैं। पहले तो गाँव चलो। यहीं रहे तो मुझे भय है, कहीं कोई उपद्रव न हो जाय। बड़े घरों की लड़कियों के पीछे सभी लगे रहते हैं। फिर यह तो इकलौती है। मेरी जायदाद, धन-दौलत के लालच में पड़ कर न जाने वह लड़का क्या कर बैठे! वैसे मैंने मिलने के सब रास्ते बन्द कर दिये हैं, लेकिन सयानी लड़की को घर में कैद करके तो नहीं रख सकते।"

स्पष्ट था कि उन्हें गाँव जाने में कल्याण की राह दिखाई दे रही थी।

अचानक गाँव जाने की तैयारी से अमिता को आश्चर्य हुआ। राकेश से उसने सम्पर्क स्थापित करने की बहुतेरी चेष्टा की, किन्तु वह न तो फ़िरोजा से मिल सकी और किसी अन्य सहेली से। फोन कट चुका था और बाहर जाने के सभी रास्ते बन्द थे।

अन्त में विवश हो वह सेठजी के पास जा पहुँची और बोली—"पिता जी! एक बार मैं अपनी सहेलियों से तो मिल लूं। हम लोग जा रहे हैं, पता नहीं कब लौटना हो?"

सेठजी मुस्कारा कर बोले—"तुम सब से खुद कहोगी कि शादी के लिए गाँव जा रही हो? वैसे जिससे मिलने जाना चाहती हो, वह तुमसे पहले वहाँ पहुँच गया है। परेशान न होओ। खाना खा कर अब हम लोग चल देंगे।"

अमिता के मन में राकेश के प्रति सहज श्रद्धा उत्पन्न हो उठी। वह सोचने लगी—"वास्तव में वह देवता है। रात्रि में मैंने इनकार कर

दिया, तो उसने स्वयं प्रस्ताव करके मुझे अपना बना लिया !'

उसके सम्मुख अब कोई विकल्प शेष न था ।

चौबीस घंटे के बाद फिर वही घड़ी आ गयी । एक मर्मान्तक चीत्कार इस भाँति वातावरण में व्याप्त हो गया । राकेश जाग गया । लेकिन आज उसके लज्जित मन में कौतूहल नहीं जागा । उसने आँखें खोलीं तो देखा कि लालाजी कमरे के बाहर जा रहे हैं । ऊपर चलने-फिरने की प्रतिध्वनि सुनायी पड़ी । उसके बाद शान्त वातावरण में सीढ़ियों पर किसी के ऊपर चढ़ने का स्वर ध्वनित होने लगा । राकेश समझ गया कि अब बलवन्त ऊपर जा रहा है ।

उसके अंतस्तल में विगतरात्रि की सारी घटना चित्रित हो उठी । तभी सहसा उसका ध्यान सिमिट कर एक बिन्दु पर केन्द्रित हो गया । रोगिणी के सिरहाने बैठी एक लड़की !

तब एक कड़ी में दूसरी कड़ी जुड़ने लगी । स्वप्न के अन्दर स्वप्न करवट लेने लगे ।

अब उसे अपनी माँ का ध्यान आया । वे भी बीमार पड़ी थीं । ताप से पीड़ित जर्जर शरीर, दुखी मन लेकर वे अपने अन्तिम समय की प्रतीक्षा करती थीं । उसे परिचर्या में संलग्न देख कर वे दुखी होतीं थीं । कभी कहतीं—तू बहुत छोटा है चाँद, तेरा ब्याह देख पाती तो बड़ा सुख मिलता । कभी कहतीं—तू थक गया होगा । तेरे कोई बहन होती तो खाना पका देती ।

उसकी दृष्टि अनायास खिड़की के पार आकाश की ओर उठ गयी । रात्रि के निविड़ अन्धकार से परिपूर्ण आकाश पर नक्षत्रों की आँख-मिचौनी चल रही थी ।—माँ ने उसे सदा प्यार से चाँद कहा था । वे प्राय: कहतीं—तू मेरा चाँद है ।

माँ की कोई इच्छा पूरी नहीं हुई। ऊपर से शान्त किन्तु अन्दर से अशान्त नारी के मनोभावों को भला कौन समझ सका है !

सहसा उसे याद आया—भैयादूज के दिन वे उदास हो जाती। और उसे स्वयं भी बहन न होने का कितना दुख था।

अब उसने सोचा—मेरी बहन होती तो वह भी माँ की बीमारी के समय में इसी भाँति इनके सिराहने बैठती तो माँ को कितना सुख मिलता। मैं भी तो आज इतना अकेला न होता। बचपन में खेलने का साथी होता और मैं उसके जीवन में खुशियों की निधियाँ भर देता। ढूँढ़ कर सुन्दर-स्वस्थ वर से उसका विवाह रचाता। विधाता ने मुझे भाई के सुख से वंचित कर दिया। उसे प्रसन्न देखने के लिए मैं कुछ न कुछ करता? अपने हाथों से सजा कर उसे विदा करने के समय मेरी कैसी मनस्थिति होती !

अब उसे याद आयी—अमिता। साथ ही शरीर में कुछ पीड़ा का आभास हुआ। फिर प्रश्न उठा—उसने ऐसा क्यों किया?

—अच्छा, ऐसा भी तो हो सकता है कि इसमें उसका कोई भी योग न हो। उसे कुछ भी मालूम न हो। वह रोज के हिसाब से क्लब में समय पर पहुँची हो और मुझे न पाकर स्वयं इसी प्रकार की उलझनों में फँस गयी हो।

—मैंने ग़लती की। समय से पहले क्लब न जाता तो यह काण्ड न होता।

लेकिन फिरोजा? उसी ने उसे संध्या की भेंट के सम्बन्ध में बताया होगा। फिरोजा ने तो नवाब साहब के संकेत करते ही विवाह की अनुमति दे दी। तो क्या वह विवाह का प्रस्ताव करने के लिए ही मुझे अपने कमरे में ले गयी थी? अपनी सहेली के सुहाग पर डाका डालने का इरादा था !

—किन्तु मैनेजर साहब वहाँ कैसे पहुँच गये?

—वे स्वयं फिरोजा से विवाह के इच्छुक होंगे। तभी तो प्रतिस्पर्धी

बात-सा व्यवहार कर रहे थे !

—उन्होंने विवाह के प्रस्ताव का खण्डन किया। मुझे मार्ग से हटाने के लिए जेल भेजने का प्रस्ताव किया। प्रेम में वे अन्धे हो गये। सभी हो जाते हैं। मैं भी हो गया हूँ।

अब मैं उनसे मिल कर विनति मात्र करूँगा। वे मिथ्या विश्वास करते हैं। लेकिन मैं उनके हृदय में स्थान बना लूँगा। मैं उनकी घृणा और द्वेष को, प्रेम और मित्रता में बदल दूँगा।

लाला हरप्रसाद सिंह ने कमरे में प्रवेश किया। उसे जागता देख कर वे बोले—"कैसी तबियत है? डाक्टर आया था। लेकिन तुम सो गये थे। अभी बुलाता हूँ बादशाहो।"

राकेश ने देखा कि लालाजी के मुख पर पीड़ा व भय के साथ साथ कुछ उत्साह एवं आशा का चिह्न है। कल रात को जब वे उसके कमरे में निकले थे, तो उस समय निराशा के बादल छाये हुए थे। उसे इस परिवर्तन पर आश्चर्य हुआ। वह बोला—"डाक्टर की कोई जरूरत नहीं है। बदन में थोड़ा-सा दर्द है, सवेरे तक ठीक हो जायगा।"

लालाजी बोले—"तो ऐसा करो कि मिसरी मिला दूध पी लो। साथ [illegible] लेना। उसके बाद प्रेम से भोजन करो। लेकिन डाक्टर को दिखाने में कोई नुकसान नहीं। इसलिए दिखा ही लो। मेरे को आराम मिलेगा बादशाहो।"

लालाजी ने रिसीवर उठाया डायल घुमाकर नम्बर मिलाया। डाक्टर को आने का आदेश देकर वे निश्चिन्त होकर बैठ गये।

राकेश ने आँखें बन्द कर लीं। उसके बदन में पीड़ा की लहरें उठीं और उसके मन को खरोंच देतीं।

अब वह बोला—"मैं किस काबिल हूँ! एक नालायक और आवारा आदमी। न कोई आगे है न पीछे। मेरी असलियत तो अब आपसे छिपी नहीं है।"

उसकी इस बात पर भी लालाजी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

लालाजी बोले—"तुम नहीं जानते। गिरते हैं शहसवार ही मैदाने जंग में। तुम बेकार की बातें न करो। मैं तुम्हारी लगन देखकर बड़ा खुश हूं। एक दिन रंग बदल जायगा। बस डटे भर रहो। अपने-आपको भगवान पर छोड़ दो, सब ठीक हो जायगा बादशाहो।"

राकेश को प्रतीत हुआ जैसे वह एक बदनुमा रंग में डूब गया है।

एकाएक अमिता के व्यवहार का अर्थ उसकी समझ में आने लगा। विवाह के सम्बन्ध में उसके शब्द अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए। मन में ज्ञान-तन्तु उभरने लगे—तुमने एक पुंश्चली से सम्बन्ध स्थापित किया है। अब तुम जीवन में किसी से प्रेम नहीं कर सकते। किसी के साथ विवाह करके उसे अपना झूठा प्यार और कलंकित शरीर अर्पण करोगे? नहीं अब तुम्हारे जीवन में नारी का प्रवेश-निषेध है। प्रेम तो एक नारी से होता है। तुम स्वच्छाचारी बन जाओगे।

उसकी आत्मा का स्वर था—सदाचारी बनो।

उसने निश्चय किया कि वह अपना जीवन वासना से दूर रखेगा और भविष्य में सदा स्वेच्छाचारी, आधुनिकाओं एवं स्वैरिणी से दूर ही रहेगा। हाँ, मैं सब कुछ भगवान पर छोड़ दूंगा। केवल इच्छा से नहीं, बल्कि अपने कर्म से संसार पर विजय प्राप्त करूँगा। मैं साधारण मनुष्य नहीं, असाधारण व्यक्ति बनूंगा। आज मुझे भर्त्सना मिली, तो कल श्रद्धा मिलेगी।

उसने सोफ़े पर ही करवट बदली। स्थान की कमी के कारण शरीर को घुमाने में पीड़ा हुई और वह कराह उठा।

वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि तन की पीड़ा अधिक है या मन की!

उसने करवट ली और लालाजी ने अपनी राग-माला छेड़ दी। वे बोले—"जानते हो आज क्या हुआ? मजा आ गया बादशाहो।"

राकेश ने उनके प्रश्न का कोई उत्तर न दिया। वह मन-ही-मन बोला—हाँ जानता हूं। भला मैं नहीं जानूंगा। आपने तो केवल

सुना है। मज़ा आया होगा, अवश्य होगा। दूसरे को जूते पड़ें तो सभी को मज़ा आता है।

अपनी धुन में मगन लालाजी उसकी मनोदशा को नहीं भूले थे। वास्तव में वे चाहते थे कि उसका ध्यान बँट जाय। अतः वे बोले—"बीस साल में आज पहली बार तुम्हारी चाची की आँखों में मैंने विश्वास और उत्साह की एक ज्योति देखी। जानते हो? नहीं, तुम कुछ भी नहीं जानते? लेकिन ऐसा पहले कभी नहीं हुआ! मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम्हारा आगमन मेरे लिए बड़ा शुभ सिद्ध हुआ बादशाहो।"

राकेश के मन में वितृष्णा की कुहुक उठी। हाँ! क्यों नहीं शुभ सिद्ध होगा! खूब रस लेकर मेरी दुर्दशा का वर्णन हुआ होगा! —अच्छा, तो अपने मनोरंजन के लिए ही मुझे यहाँ लाया गया है। जिसमें सब लोग देखें और खुश हों! मेरी दशा है भी ऐसी ही! किसी घायल पशु को सहानुभूति देना भी मनोरंजक होता है।

उसकी चुप्पी से लालाजी पर कोई असर नहीं पड़ा। वे अपने मन के उद्गारों में मगन थे। अब उन्होंने कहा—"मैंने भी आज कमाल कर दिया। न जाने कल से क्या हो गया है! मैंने अंजु को यहीं रोक लिया। तुम्हारी क्या राय है? ठीक किया न! बी० ए० काफी है। न होगा तो यहीं किसी कालेज में पढ़ लेगी। लेकिन··· लेकिन जो आज हुआ, वह पहले भी तो हो सकता था। ऊँहूँ, तुम बताओ ठीक है न बादशाहो।"

राकेश के मन में क्षोभ की लपटें प्रत्येक शब्द को जला कर भस्म कर रही थीं। उसकी समझ में लालाजी का प्रत्येक शब्द व्यंग से परिपूर्ण था। उसके मन में आया—वह उठकर चल दे। उसने सोचा कि वह शीघ्र उठे और संसार में घोषित कर दे कि ऐसा क्यों होता है। वह कोई दुराचारी नहीं, चोर नहीं, बल्कि एक सीधा-सादा इनसान है। जो कुछ भी आज हुआ है उसमें भी उसका

नहीं है। वैसे जो कुछ कल हुआ था, उसमें भी उसका कोई हाथ न था। यह तो केवल संयोग है कि वह परिस्थिति का शिकार बन गया।

अब उससे चुप न रहा गया। अतः उसने कह दिया—"पहले कैसे हो जाता? होना तो आज था।"

एकाएक उसके मन में आया—अगर कल रात इससे भेंट न होती या ये अपने घर न ले आये होते तो कुछ भी न होता। मैं समय से मिल जाता, वहाँ से लौटकर क्लब जाता तो फिरोज़ा की अपेक्षा अमिता से भेंट होती। विवाह की समस्या चाहे न सुलझती किन्तु इतना अपमान तो न होता।

अब उसने व्यंग्यात्मक स्वर में कह दिया—"आपसे पहले भेंट नहीं हुई थी। नहीं तो, जो आज हुआ है, वह पहले हो जाता।"

लालाजी ने उसके इस कथन को साधारण अर्थ में ही ग्रहण किया। वे तो एक प्रकार से अपने अन्तर्मन से वार्ता कर रहे थे। वर्षों की उलझी हुई गुत्थी का एक फन्दा और खुला। वे बोले—"कितनी भूल हो गई! जो आज किया है वही पहले करता तो भी अन्तर न पड़ता। कम-से-कम आँखों के सामने तो रहती। जो स्थिति पहले थी, वही तो आज भी है। वही अंजु है, बिलकुल वही। ज़रा-सी भी तो नहीं बदली। बदल तो मैं गया हूँ। जमाना बदलता रहा, उसके रंग-ढंग बदलते रहे, पर मैंने ध्यान ही नहीं दिया। अरे, अभी तक बलवन्त नहीं आया। अब दरद कैसा है बादशाहो?"

अपनी धुन में बोलते हुए शायद लालाजी को स्मरण आ गया कि भावना के आवेग में वे बहक रहे हैं। मगर राकेश सोच रहा था कि यह अंजू कौन है! उसे आश्चर्य हुआ पर उसने मौन ही रहना उचित समझा। रहस्यों की परत एक के बाद एक करके उतर रही थी। अपनी उत्कंठा के प्रदर्शन से उसे समाप्त करना उचित नहीं समझा। किन्तु उनके विचारों में एकाएक उत्पन्न परिवर्तन उससे छिपा न रह सका। वह समझ गया कि लालाजी अब सतर्क हो गये हैं।

उनकी दृष्टि की ओर देखते हुए उसने सहज भाव से कह दिया—"अब तो काफी ठीक हूँ।"

एक मिनट में ही उसने एक आक्रामक नीति स्थिर कर प्रहार कर दिया। वह बोला—"चाचीजी की आज तबियत कैसी है! उनकी आँखों में जब विश्वास और उत्साह की ज्योति देखी है, तो इसका अर्थ तो यही हुआ कि अब वे पहले से स्वस्थ हैं। मैं समझता हूँ कि आपने अंजू को भी इसीलिए रोक लिया। आपने जो कुछ आज किया है, वह पहले कभी नहीं किया! जो कुछ आज हो रहा है, वह भी पहले नहीं हुआ था। लालाजी, वास्तव में मेरी दशा भी यही है। मेरे जीवन में भी यह सब आज ही हुआ है। विधाता ने खूब सोच-समझ कर हम दोनों की जोड़ी मिलाई है।"

यह क्या जानता था कि उसका यह प्रहार निष्फल चला जायगा। लालाजी के ऊपर राकेश के कथन का उलटा प्रभाव पड़ा। वे अपना पक्ष सम्हालते हुए उत्साहित हो उठे। उन्होंने कहा—"जो घटना जिस समय होनी है, वही उसका समय होता है। लो समय हो गया और डाक्टर साहब नहीं आये। ऐसी हालत में भोजन हो जाय तो? ·· क्या ख्याल है बादशाहो?"

राकेश ने कुछ उत्तर न दिया। उसे नींद का झोंका आ गया और वह सो गया।

कार से उतर कर अमिता ने अपने गाँव वाले बड़े से मकान में जब प्रवेश किया, उस समय उसे ध्यान न रहा कि मकान में केवल एक ही द्वार है और वह है प्रवेश-द्वार। अन्य सभी लोग उसी में से होकर अन्दर जाते हैं और बाहर आते हैं। किन्तु उसके प्रवेश करने के बाद उसे उस राह से फिर कभी अपनी इच्छा बाहर आना असम्भव होगा,

ऐसा भला वह सोच भी कैसे सकती थी !

आस-पास के दो-चार गांव में सेठजी का मकान हवेली के नाम से प्रसिद्ध था। पुराने जमाने में बने मकानों की भाँति उसमें नीचे की मंजिल में कोई खिड़की न थी। दीवारें बहुत मोटी थीं जिनमें लगभग छत की ऊँचाई पर छोटे-छोटे रोशनदाननुमा छेद बने हुए थे। कई कोठरियाँ और कमरे तो ऐसे थे, जिनमें दोपहर के समय भी दीपक जलाना पड़ता था। ऊपर की मंजिल में भी कमरों से या छत से बाहर का दृश्य नहीं दिखाई देता था। तहखाना तो इतना विशाल था कि ग़दर के समय में सेठजी के प्रपितामह ने बासठ अंग्रेज स्त्री-पुरुषों को उसी में बड़ी सफलतापूर्वक सोलह दिन टिकाये रखा था। इसी तहखाने में एक तरह कई कोठरियाँ बनी हुई थीं, जिनमें इनके पूर्वज बादशाही युग में अपनी जमा एवं बहुमूल्य सामग्री रखते थे। उस युग में बड़े आदमियों के मकान का जनाना हिस्सा तो जेलखाने के अनुरूप होता था।

अतः जब मनोरमा और अमिता अन्दर जा कर विश्राम करने लगीं, तो सेठजी ने मरदाने भाग में आकर गद्दी सँभाली और भावी कार्य-क्रम के सम्बन्ध में विचार करने लगे। मालिक के अचानक आगमन से सोया हुआ मकान जाग उठा था। इधर से उधर नौकर-चाकर दौड़ रहे थे। सभी के मुख पर व्यस्तता का भाव था। कोई भी यह नहीं चाहता था कि एकाध दिन के लिए आया हुआ मालिक उसे बेकार समझे।

एकाएक उनकी दृष्टि दालान के उस भाग पर जा पड़ी, जहाँ जनाने भाग में जाने का द्वार था। उन्होंने लक्ष्य किया कि जितने भी सेवक हैं वे उस द्वार के अन्दर न तो पग रखते हैं और न दृष्टि उठाकर अन्दर की ओर देखने का प्रयास करते हैं। जो भी सामान होता है वहाँ नियुक्त नौकरानियाँ उसी जगह से सम्हाल लेती हैं। मर्यादा का यह बन्धन उन्हें अच्छा लगा। मन में आया—चंचला नारी के लिए बन्धन

आवश्यक है। कदाचित इसी कारण पुरातन काल में हम नारी को बन्धन में रखते थे। पर आज के युग की दशा···राम, राम !

तभी उन्होंने देखा कि रामू अन्दर प्रवेश कर रहा है। नौकरानियों के मध्य मानो कोई वनमानुष आ गया हो। वे सब सहम गईं और सभी ने अपने सर पर पड़े पल्ले को वक्ष तक खींच लिया।

सहसा उन्हें रोमांच हो आया। उसके इस प्रकार भीतर आने का अर्थ वे जानते थे। फिर झट उन्हें परिणाम का ध्यान आ गया—कल सारा गाँव ही नहीं, आत्मीय-बन्धु पर भी प्रकट हो जायगा कि सेठ मुरली मनोहर के घर में क्या होता है !

एक कुटिल मुसकान से उनका मुख आलोकित हो उठा। उन्होंने बाहर के मुख्य द्वार की ओर देखा। पहरेदारों के समीप कन्हई खड़ा हुआ नारियल का हुक्का फूंक रहा था। उन्होंने उसे पुकारा और आदेश दिया कि वह स्वयं भीतर जाय और अपने साथ रामू को लिवा लाये।

कन्हई को भीतर भेजने के दो अभिप्राय थे। एक तो वह भेद जानता था, दूसरे उसके जाने को देखकर लोग इन लोगों का आना साधारण बात समझ लें और उस पर कुछ विशेष ध्यान न दें। कन्हई के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति भी ऐसा नहीं था जिस पर वे विश्वास कर सकते।

सेठजी ने रामू के आते ही कन्हई को बाहर भेज दिया। फिर उसको एक मिनट तक विचारपूर्ण मुद्रा में देखते रहे। जब से मनोरमा की कृपछाया उसे प्राप्त हो गई थी, उसके मन में सेठजी के प्रति स्पर्धा का भाव उत्पन्न हो गया था। उसे मन-ही-मन इस बात का बड़ा दुख था कि सब कुछ प्राप्त है, सभी सुख उपलब्ध हैं, किन्तु स्थिति तो एक सामान्य ड्राइवर की ही है। यदा कदा मनोरमा उसे रुपया—पैसा भी देती रहती थी, पर समाज में कोई स्थान न होने का दुख, उसे चैन नहीं लेने देता था। उसकी आकांक्षा थी कि अगर वह सेठ न बन सके, तो

ऐसा भला वह सोच भी कैसे सकती थी !

आस-पास के दो-चार गांव में सेठजी का मकान हवेली के नाम से प्रसिद्ध था। पुराने जमाने में बने मकानों की भाँति उसमें नीचे की मंजिल में कोई खिड़की न थी। दीवारें बहुत मोटी थीं जिनमें लगभग छत की ऊँचाई पर छोटे-छोटे रोशनदाननुमा छेद बने हुए थे। कई कोठरियाँ और कमरे तो ऐसे थे, जिनमें दोपहर के समय भी दीपक जलाना पड़ता था। ऊपर की मंजिल में भी कमरों से या छत से बाहर का दृश्य नहीं दिखाई देता था। तहखाना तो इतना विशाल था कि ग़दर के समय में सेठजी के प्रपितामह ने बासठ अंग्रेज स्त्री-पुरुषों को उसी में बड़ी सफलतापूर्वक सोलह दिन टिकाये रखा था। इसी तहखाने में एक तरह कई कोठरियाँ बनी हुई थीं, जिनमें इनके पूर्वज बादशाही युग में अपनी जमा एवं बहुमूल्य सामग्री रखते थे। उस युग में बड़े आदमियों के मकान का ज़नाना हिस्सा तो जेलखाने के अनुरूप होता था।

अतः जब मनोरमा और अमिता अन्दर जा कर विश्राम करने लगीं, तो सेठजी ने मरदाने भाग में आकर गद्दी सँभाली और भावी कार्य-क्रम के सम्बन्ध में विचार करने लगे। मालिक के अचानक आगमन से सोया हुआ मकान जाग उठा था। इधर से उधर नौकर-चाकर दौड़ रहे थे। सभी के मुख पर व्यस्तता का भाव था। कोई भी यह नहीं चाहता था कि एकाध दिन के लिए आया हुआ मालिक उसे बेकार समझे।

एकाएक उनकी दृष्टि दालान के उस भाग पर जा पड़ी, जहाँ जनाने भाग में जाने का द्वार था। उन्होंने लक्ष्य किया कि जितने भी सेवक हैं वे उस द्वार के अन्दर न तो पग रखते हैं और न दृष्टि उठाकर अन्दर की ओर देखने का प्रयास करते हैं। जो भी सामान होता है वहाँ नियुक्त नौकरानियाँ उसी जगह से सम्हाल लेती हैं। मर्यादा का यह बन्धन उन्हें अच्छा लगा। मन में आया—चंचला नारी के लिए बन्धन

आवश्यक है। कदाचित इसी कारण पुरातन काल मे हम नारी को बन्धन में रखते थे। पर आज के युग की दशा…राम, राम !

तभी उन्होने देखा कि रामू अन्दर प्रवेश कर रहा है। नौकरानियों के मध्य मानो कोई वनमानुष आ गया हो। वे सब सहम गई और सभी ने अपने सर पर पडे पल्ले को वक्ष तक खीच लिया।

सहसा उन्हे रोमांच हो आया। उसके इस प्रकार भीतर जाने का अर्थ वे जानते थे। फिर झट उन्हें परिणाम का ध्यान आ गया—कल सारा गाँव ही नही, आत्मीय-बन्धु पर भी प्रकट हो जायगा कि सेठ मुरली मनोहर के घर में क्या होता है !

एक कुटिल मुसकान से उनका मुख आलोकित हो उठा। उन्होंने बाहर के मुख्य द्वार की ओर देखा। पहरेदारों के समीप कन्हई खड़ा हुआ नारियल का हुक्का फूंक रहा था। उन्होने उसे पुकारा और आदेश दिया कि वह स्वयं भीतर जाय और अपने साथ रामू को लिवा लाये।

कन्हई को भीतर भेजने के दो अभिप्राय थे। एक तो वह भेद जानता था, दूसरे उसके जाने को देखकर लोग इन लोगों का जाना साधारण सा। समझ लें और उस पर कुछ विशेष ध्यान न दें। कन्हई के अति॰ रिक्त कोई अन्य व्यक्ति भी ऐसा नही था जिस पर वे विश्वास कर सकते।

सेठजी ने रामू के आते ही कन्हई को बाहर भेज दिया। फिर उसको एक मिनट तक विचारपूर्ण मुद्रा में देखते रहे। जब से मनोरमा की छत्रछाया उसे प्राप्त हो गई थी, उसके मन में सेठजी के प्रति स्पर्धा का भाव उत्पन्न हो गया था। उसे मन-ही-मन इस बात का बडा दुख था कि सब कुछ प्राप्त है, सभी सुख उपलब्ध हैं, किन्तु स्थिति तो एक सामान्य ड्राइवर की ही है। यदा कदा मनोरमा उसे रुपया—पैसा भी देती रहती थी, पर समाज में कोई स्थान न होने का दुख, उसे चैन नही लेने देता था। उसकी आकांक्षा थी कि अगर वह सेठ न बन सके, तो

कम-से-कम एक अच्छा दूकानदार तो बन हीजाय। मनोरमा से उसे प्रेम था। एकाध बार उसने नौकरी छोड़ देने और स्वतन्त्र व्यवसाय प्रारम्भ करने के सम्बन्ध में उससे चर्चा भी की थी। पर मनोरमा ने सदैव विरोध किया। उसका तर्क था कि उस दशा में सेठजी उसके घर आने के ऊपर प्रतिबन्ध लगा देंगे और दोनों कुछ भी न कर सकेंगे क्योंकि समाज के सम्मुख सर उठा कर चलने और अवसर आने पर विद्रोह करने की क्षमता कायरों में नहीं होती।

सेठजी ने आज काँटे से काँटा निकालने का निश्चय किया।

स्वाभाविक गति को मोड़कर वे अत्यन्त निर्लिप्त वाणी में बोले—"बैठ जाओ रामू। अपने हृदय की पिछले कई वर्षों से मैं एक दुविधा में हूँ। तुम तो जानते ही हो कि मेरे कोई लड़का नहीं है। उस दिशा में मेरे बाद मेरी सम्पत्ति का उत्तराधिकार मेरी पत्नी और अमिता का है।"

सेठजी एक क्षण रुके और अपने कथन से उत्पन्न प्रतिक्रिया का अध्ययन करने लगे। उन्होंने जान-बूझ कर 'मेरी पत्नी' शब्द का प्रयोग किया था। वे समझते थे कि रामू के मन में अगर सम्पत्ति लोभ न जगा सकेगी तो अहं अवश्य जागृत हो जायगा। उस दशा में मुख्य वस्तुस्थिति की ओर उसका ध्यान नहीं जायगा।

फिर भी संशय का समूल नाश करने के लिए उन्होंने कहा—"मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। मैंने किसी को बताया नहीं, आज तुमसे कह रहा हूँ। डाक्टरों को कैंसर का शक है। वैसे भी उमर का तकाज़ा है, पता नहीं कब बुलावा आ जाय। इसलिए मैं इलाज के सिलसिले में विदेश जाने की सोच रहा हूँ।"

रामू को शिष्टाचार तो निभाना ही था। वह बोला—"विदेश के पहले आप यहीं इलाज करा लें। अब यहाँ बड़े-बड़े अस्पताल खुल गये हैं।"

सेठ जी ने सहज भाव से कहा—"कैंसर का इलाज तो संसार में नहीं है। यह तो प्राणलेवा बीमारी है। अमिता की शादी करने के लिए

म यहाँ आये है। लेकिन वह तो वहाँ से भी हो [illegible]

हाँ आने का दूसरा ही मतलब था।

रामू सोचने लगा—कोई खास बात जरूर है। [illegible]

बोले—"बात यह है कि मेरे बाद मनोरमा की देख[illegible]

जायगी और अगर मैं अचानक मर गया तो बहुत[illegible]

चिता में भस्म हो जायगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि [illegible]

लो। वैसे तो जो कुछ लेना-देना है, वह [illegible]

मनोरमा को कम्पनी के बारे में मालूम है। [illegible]

सामान है उसका विवरण उसे मालूम है। लेकिन मैं चाहता हूँ कि

यहाँ का सब सामान तुम देख-सुन लो। [illegible]

पर वह तहखाने के ताले वगैरह [illegible]

प्रकार से पूरा गोरख धन्धा है। कई [illegible]

में चुना है। खास कर के जो [illegible]

न हो, कोई ढूंढ ही नहीं सकता। [illegible]

अशर्फियाँ और मोहरें तोल कर रखी जाती थीं। [illegible]

ने इस मकान को बेच दिया तो करोड़ों की [illegible]

जायगी। व्यापार वगैरह तो केवल दिखावा है। [illegible]

यहाँ है।"

रामू विस्फारित नेत्रों से ध्यानपूर्वक सब कुछ सुन रहा था। [illegible]

मन में एक विचार उठा—सेठजी के बाद वह मनोरमा से [illegible]

आसानी से ले लेगा। उस दशा में वह भी धनी और [illegible]

बन जायगा। ..मगर सेठ जी के बाद। लेकिन उन्हें [illegible]

भी तो जा सकता है!

अब वह बोला—"बहू जी को तो मालूम ही है। [illegible]

को समझा दीजिए। मैं एक मामूली ड्राइवर [illegible]

बाहर किया गया तो?"

[illegible] "[illegible] कोई नहीं [illegible]

सकता । मैंने नहीं निकाला, यह तो तुम जानते ही हो और मनो निका-
लने से रही ।"

रामू ने गम्भीरता से कहा—"बाद में मुनीम जी वगैरह गड़-
बड़ कर सकते हैं । आप तो जानते ही हैं कि मैं अधिक पढ़ा नहीं हूँ ।
फिर भी कामकाज मुनीम जी के हाथ में है । उस समय भी वही सम्हा-
लेंगे । रुपये-पैसे का मामला ठहरा । वे तो चाहेंगे कि बहूजी को बहका
कर सब कुछ लूट लें । हिसाब-किताब में उलट-फेर करते उन को कितनी
देर लगती है ।"

सेठजी को आशा नहीं थी कि रामू ने भी उस दिशा में विचार
किया होगा । वे तपाक् से बोले—"मैंने सब प्रबन्ध कर रखा है । मेरी
वसीयत देखोगे तो सब समझ जाओगे । मैंने तुम्हें मुख्य-प्रबन्धक बनाया
है । इसीलिए तो मैं यहाँ का भी सब तुमको सौंप रहा हूँ । वैसे भी
हममें और तुममें कोई अन्तर तो है नहीं । क़ायदे से मेरे बाद गद्दी तुम्हीं
को मिलनी चाहिए ।"

जादू वो जो सर चढ़ कर बोले ।

रामू के मुंह से निकल गया—"आपका तो मैं दास हूँ ।"

सेठ जी ने सर हिला दिया और कहा—"दास हो जाने के बाद
कोई पराया नहीं रह जाता । देखो, कार में जो लोहे का काला कैशबक्स
है, उसे ले आओ । यहाँ की चाभियाँ उसी में हैं । पुराने ज़माने
के ताले हैं । तरह-तरह के खटकेदार । दरवाज़ों में भी बड़े पेंच हैं
ध्यान से समझ लो ।"

कथन के साथ ही रामू उठ कर कार की ओर चला गया ।

आध घंटे बाद जब सेठजी तहखाने से बाहर आये, तो वे अके
थे । किसी ने रामू को उनके साथ जाते नहीं देखा था और वे जानते
कि उसकी चीख-पुकार भगवान के सिवा कोई नहीं सुनेगा ।

पुरानी जंगखायी बड़ी-बड़ी चाभी का गुच्छा कैशबाक्स में रख
वे पुनः लेट गये । अब उनका ध्यान अमिता की ओर चला गया ।

नित्य की भाँति लगभग पाँच बजे राकेश की आँख खुल गयी। ड्राइंग रूम में अपने को अकेला पड़ कर उसे कुछ आश्चर्य हुआ परन्तु समय की ओर ध्यान जाते ही वह समझ गया कि उसे सोया हुआ देख कर लालाजी भी विश्राम करने के लिए चले गये होंगे।

चारों ओर स्तब्धता का साम्राज्य छाया था। प्रातःकालीन चिड़ियों के कलरव के अतिरिक्त कहीं से कोई शब्द, ध्वनि या खटपट भी सुनाई न दे रहा था। अब उसे ध्यान आया—अपनी नौकरी का।

विश्रामदायिनी निद्रा ने न केवल तन की पीड़ा हर ली थी, अपितु मन भी एक सीमा तक स्वस्थ हो गया था। विगत दिवस का अवसाद केवल स्मृति के रूप में एक घाव बनकर टीस रहा था। किन्तु विवशता के सम्मुख उसने अपने को समर्पण करने का निश्चय किया।

वह उठ कर खड़ा हो गया। एकाएक उसकी आत्मा ने उसके समक्ष एक प्रस्ताव रक्खा—'अपने को भूल जाओ। भावना में डूब कर जीवन नष्ट हो जाता है। दिन में तो तुम एक क्लर्क मात्र हो। फिर अपने काम पर जाओ। रहा मैनेजर साहब का प्रश्न, सो तुम उनसे मिल कर स्थिति का स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर देना। ऐसा मत सोचो कि हर व्यक्ति बुरा ही होता है। आज नहीं तो कल, तुम्हें उनका सामना करना ही पड़ेगा। पर ध्यान रक्खो सत्य से भाग कर मनुष्य कहाँ जा सकता है। एक बार गाँव से भाग कर यहाँ आये। अब यहाँ से भागकर किसी दूसरे शहर में जाने पर भी कौन कह सकता है कि ऐसी ही कोई अन्य परिस्थिति न उत्पन्न होगी। यहाँ से भी भागोगे! तुम्हें तो यहीं पर रह कर अपनी स्थिति बनानी है।'

साथ ही ध्यान आया—'अमिता! हाँ अमिता को प्राप्त करने और अपनी आत्मा, हृदय और तन के कलुष को धोने के लिए भी तो यहीं रहना है!'

उसके कण्ठ से एक निःश्वास निकल गया। फिर सहसा उसका हाथ कालबेल की ओर बढ़ गया। किन्तु स्विच तक पहुँचते-पहुँचते

सका विचार बदल गया।

—सम्भव है उसे लालाजी न जाने दें! मिल से नौकरी छोड़ने का र्थ तो यही होगा कि मैं लालाजी के टुकड़ों पर निर्भर हो जाऊँ!

अब राकेश ने अत्यन्त दृढ़ता के साथ क़दम उठाने का निश्चय किया। उसने जेब से फाउन्टेन पेन निकाला और वहीं ड्राइंग रूम में पड़े हुए खाकी कागज के लिफाफे को उठा कर एक ओर से काट कर फैलाया और लालाजी को सन्देश लिखने बैठ गया।

कुछ क्षण तक वह सेन्टर टेबुल पर बिछे हुए कागज को यों ही देखता रहा फिर उसने लिखा :

आदरणीय लालाजी,

छ बजने वाले हैं। आप विश्राम कर रहे होंगे। इसलिये मैं कष्ट देना उचित नहीं समझता। मेरी स्थिति तो आपसे छिपी नहीं है। मुझे सम्पूर्ण निष्ठा के साथ जीवन के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाना है। इसलिये मैं जा रहा हूँ। कल ड्यूटी पर नहीं गया था, लेकिन आज तो ऐसी कोई बात नहीं है जिसके कारण न जाऊँ।

आप चिन्ता न करें। मेरी तबियत बिलकुल ठीक है।

आपके विशाल हृदय में किसी एक कोने में मेरे लिए स्थान है इस बात से मुझे बड़ा बल मिलता है। मैं आपको कभी नहीं भूल सकता। मेरे जीवन के एक संघर्षमय क्षण में आपने सहायता दी है। अब मैं स्वयं संघर्ष में कूद रहा हूँ। मैं भाग नहीं रहा हूँ। बिना भेंट किये चले जाने का मुझे दुःख है। लेकिन आप रोक न लें, इसीलिए इस समय चुपचाप जा रहा हूँ। अब मैं रविवार को संध्या को आपसे मिलने आऊँगा।

पूज्यनीया चाची जी से मेरा प्रणाम कहने की कृपा करें।

आशा है, आप क्षमा करेंगें।

सदा आपके आशीर्वाद का इच्छुक,

राकेश मिश्र।

उसी जगह को छोड़कर राकेश कमरे से बाहर निकला। दरवाजे को चिपकाकर बन्द कर दिया और दालान पार करके लॉन में आ गया।

सूर्योदय हो गया था। हलकी-हलकी धूप ऊँचे-ऊँचे पेड़ों से छन कर बिखरी हुई थी। उस प्रात-कालीन धूप की उष्णता उसे सुखकर लगी। एक क्षण के लिए रुक कर उसने चारो ओर दृष्टि फेरी। क्यारियों में डाल से बिखरकर यत्र-तत्र पखुड़ियाँ गिरी हुई थीं। अर्ध-विकसित एवं पूर्णविकसित पुष्प मन्द पवन के झोंको में लहराते और नवजीवन का सन्देश प्रसार अपनी मादक सुगन्ध के रूप में दूर-दूर तक फैला रहे थे।

वह मुस्करा उठा। वह भी तो बिखर गया था। तो आज वह पुनः विकसित होगा। यही तो प्रकृति का विधान है। स्वच्छ वायु में उसने कई बार लम्बी-लम्बी साँसें भरीं। मानो वह अपने अन्तराल में उत्पन्न क्षोभ की सड़ाध को स्वच्छ वायु से शुद्ध कर रहा है।

फिर उसने लोहे का जालीदार फाटक खोला और सड़क पर निकल कर दृढ़ कदमो से चलने लगा।

जिस समय घर पहुँचा तो दरवाजे पर बन्द ताला खोलते समय उसे ध्यान आया—'लालाजी को शायद बहुत दुख हो! मैं वहाँ से भी तो दस बजे ड्यूटी पर पहुँच सकता था। निमिष मात्र में सभी कुछ पुनः आँखों के सामने से घूम गया। लालाजी की सवेदनशील सहृदयता और आत्मीयता के स्मरण मात्र से एक सिहरन-सी अन्तराल में थिरकी। जल से धुंधले हो आये नेत्रो से उसने द्वार खोला और जेब से रुमाल निकाल कर पोंछ डाला।

अन्दर आते ही वह सब कुछ भूल गया और उसने यन्त्रवत् दैनिक कार्य प्रारम्भ कर दिया। कपड़े बदल कर उसने स्टोव जलाया और समयाभाव का ध्यान करके झट से दो मुट्ठी चावल में अन्दाज से मूँग की दाल मिलाकर चढ़ा दिया। स्नान से निवृत होकर उसने प्रतिदिन मिल मे जाने वाले कपड़े पहने और खिचड़ी खाकर ठीक समय पर घर से निकल गया।

अपनी सीट पर जाकर जब वह बैठा तो उसके चेहरे को देखकर किसी को भी विगत दिवस की घटना का तनिक भी आभास न मिला। थोड़ी देर वह यों हीं फाइल उलटता-पलटता रहा। आज उसका ध्यान अपने सहधर्मियों की ओर न गया। न उसने उनके हँसी-मज़ाक में ही कोई हिस्सा लिया। मन-ही-मन वह भूपतलाल से भेंट होने की कल्पना कर रहा था। तरह-तरह के कथोपकथन की कल्पना करते-करते उसका मन किंचित् उद्विग्न हो गया। अब उसके मन में आया कि इस संशयात्मक स्थिति को समाप्त करने का एकमेव यही रास्ता है कि वह स्वयं जाकर भूपतलाल से भेंट कर ले। दूसरा एक लाभ, जिसकी ओर उसका ध्यान चला गया, यह था कि उनके अन्य कोई कार्यवाई करने से पहले स्थिति का खुलासा हो जाने से किसी को भी कुछ पता न चलेगा।

हाल में टँगी हुई घड़ी में ग्यारह बजने वाले थे। भूपतलाल के कार्यक्रम से वह परिचित था। वे दस बजे आते थे। कार से उतर कर सीधे मिल का निरीक्षण करते। प्रत्येक विभाग का राउण्ड करके अपने कमरे में ठीक सवा ग्यारह बजे आ जाते और बारह बजे तक डाक देखते। उसके पश्चात् वे हेडक्लर्क को बुलाकर एक बजे तक काम करने के पश्चात् लंच के लिए उठ जाते। इस बीच उनके कमरे में वही जा सकता था, जिसको वे बुलाते थे।

लेकिन उसने निश्चय किया कि हेडक्लर्क के मिलने से पहले ही वह उनसे मिल लेगा। अतः वह उठकर उनके कमरे की ओर चल दिया।

उसे चपरासी पहचानता था। अकसर ही कार्य-सम्बन्धी आदेशों के लिए उसे उस कमरे में जाना पड़ता था। उसने चपरासी को एक स्लिप दी और कहा कि इसे साहब जब कुर्सी पर बैठ जाएँ तो डाक की फाइल देने के पहले दे देना। और वह अभ्यार्थियों के लिए रखी हुई बेंच पर बैठकर प्रतीक्षा करने लगा।

जब रात को भूपतलाल अपने पलँग पर लेटे, तो उस समय उनकी मानसिक उत्तेजना शान्त हो चुकी थी। घर के स्वाभाविक वातावरण मे आकर वे पत्नी एव बच्चों की स्नेह-चेष्टाओं मे सब कुछ भूल गये। अब उनके सामने फिरोजा नही थी और न था राकेश। सदा मुसकराने वाली कुमुद के आकर्षण में वे लिप्त हो गये और अपने परिवार में खो गये।

कमरे में खिड़की से छनकर बाहर दालान में जलते हुए बल्ब का हलका प्रकाश फैला हुआ था। उजाला न होने पर भी सब कुछ स्पष्ट दिखाई देता था। केसरिया रंग की रेशमी चादर को गले तक खीचकर जैसे ही उन्होने अपनी आंखे बन्द की कि अचानक उनके कान में, बगल के कमरे से अपने छोटे भाई का, मुँह से सीटी द्वारा कोई लोकप्रिय धुन बजाता, स्वर सुनाई पड़ा। उनकी मानस-तन्द्रा-भग हो गई।

अचानक उनके मानस नेत्रों के सम्मुख दो वर्ष पश्चात् लौटे हुए अमृत का चेहरा आ गया और वह धीरे से धुंधला पड़कर फिर राकेश के चेहरे में बदल गया।

अब वे लेटे न रह सके। उठकर बैठ गये। अब ध्यान आया—मैं इतने नीचे कैसे गिर गया! कहाँ मैं, कहाँ राकेश! बदले की भावना ने तो मुझे उसके साथ एक स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया। जबकि मैं··· !

एकाएक साथ के पलँग पर सोई हुई कुमुद की ओर उनकी दृष्टि जा पड़ी।

उनके मन ने उन्हें प्रतारणा प्रारम्भ किया। मन में आया—मेरी भी तो यही दशा हो सकती है। फिरोजा का कोई भरोसा नही। राकेश में कम-से-कम आत्मबल की कमी नही। उसने विवाह के प्रस्ताव को मुक्ति का साधन मान कर भी नही स्वीकार किया।

अब उन्हें लगा कि राकेश का कथन वास्तव में सत्य था। उसे फिरोजा ही फांस कर ले गयी होगी। मैं तो उसकी नस-नस पहचानता

हूँ। वह मुझे भी फँसा सकती है।

इस प्रकार उनके मन का कलुप मिट गया। उन्होंने निश्चय किया कि भविष्य में वे सदा सतर्क रहेंगे।

फिर वे उठे और कुमुद के पलँग पर जा कर लेट रहे। स्नेहमयी कुमुद ने करवट ली और उनके स्कन्ध पर अपना हाथ रख दिया।

जब उनकी कार मिल के फाटक में प्रवेश करने लगी, उस समय उनके मस्तिष्क के किसी कोने में भी राकेश न था।

नित्य की भाँति मिल का राउण्ड कर के वे अपने कमरे में आकर बैठे, तो चपरासी ने डाक-फाइल के स्थान पर वही स्लिप उपस्थित कर दिया। सहसा नियम में व्यवधान पड़ा तो एक चलता हुआ यन्त्र अचानक रुक गया। उनकी दृष्टि में प्रश्न बना और जाकर चपरासी के मुख पर टिक गया। चपरासी ने उत्तर के स्थान पर उनके समक्ष डाक-फ़ाइल रख दी और फिर वह कमरे के बाहर निकल गया।

भूपतलाल ने साधारण तौर पर स्लिप पर नज़र डाली। पहले तो वे समझे कोई बाहरी मिलने वाला होगा। किन्तु पढ़ते ही वह स्लिप रजतपट बन गयी और विगत संध्या की सारी दृश्यावली चित्रित हो उठी।

उन्हें ध्यान आया—अमृत और उसमें कितना साम्य है। समान आयु और रूपरंग। अवसर मिला होता तो यह भी विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त करता।

अनायास अभ्यस्त अँगुलियाँ हिली और द्वार पर ट्···न्···ट्··न् गूंज गयी। चपरासी लपक कर परदा हटा कर अन्दर चला गया।

प्रतीक्षारत राकेश के हृदय का स्पन्दन तीव्र से तीव्रतम हो उठा। चपरासी उसके पास आया। वह उठा और आयासहीन-सा भूपतलाल की मेज़ के समीप खड़ा हो गया, जैसे एक सूखा हुआ पत्ता जो बवण्डर के बगूले में उड़ता रहे।

अचानक भूपतलाल का स्वर उसके कानों में पड़ा और उसका

तो···! घी का स्वाद मैं नहीं जानता। कितनी शामें ट्यूशन करने में गुज़ार दीं। जानते हैं क्यों? जिसमें कम से कम एक शाम की रंगीनी का तो मैं अनुभव कर सकूं। क्योंकि आदमी किसी न किसी भाँति जीना चाहता है। अगर मेरा कोई अपराध है, तो बस इतना···।"

कथन के बाद वह क्षण भर रुका और सहसा उसके मन में आया—'पर आपको इन बातों से क्या मतलब!'

एक उच्छ्वास उसके स्वर के साथ निकल कर वातावरण में घुल गया।

साथ ही वह फिर बोला—"क्षमा करियेगा। मैं बहक गया था। मैं यहाँ केवल इतना कहने आया था कि मेरा कोई दोष नहीं है। मिस फ़िरोज़ा खान स्वयं मुझे बहका कर ले गयी थी। जीवन में फिर कभी आप के दर्शन होंगे या नहीं, मैं नहीं जानता। लेकिन आपके हृदय में मेरे प्रति कोई भ्रांति रह गई हो तो मुझे दुख होगा। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं कहना है।"

कथन के साथ राकेश मौन हो गया।

भूपतलाल मंत्रमुग्ध से उसका कथन सुन रहे थे। क्षोभ और ग्लानि से उनके हृदय के समस्त तन्तु व्याकुल हो उठे। फिर भी वे संयत और सुस्थिर स्वर में बोले—"अब आप जा सकते हैं।"

कथन के साथ ही उन्होंने डाक-फाइल खोल कर पत्रों को पलटना आरम्भ कर दिया। राकेश को निराशा भी हुई और विस्मय भी हुआ। किन्तु वह चुपचाप कमरे से उदास कदमों से चला और अपनी मेज़ पर आकर चुपचाप बैठ गया। अब वह नोटिस की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे लगता था कि समय ने अपनी सामान्य गति बदल दी है। बार-म्बार उसकी दृष्टि दीवार में रोशनदान के ठीक नीचे टँगी हुई गोल घड़ी पर जाती और फिर सामने खुली हुई फाइल और उसमें बिखरे हुए कागज़ों पर आकर अटक जाती।

हेडक्लर्क साहब बगल में ढेर सारे कागज़ दबाए सदा की भाँति

कन्धे उचकाते और निःस्वर बुदबुदाते हुए आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गये। कागज़ों को मेज पर रखी हुई लकड़ी की ट्रे में पटक दिया और अपने सलवाट सिर पर हाथ फेरने लगे। उन्हें नित्य इसी भाँति राकेश, इसी मुद्रा में देखता था। मानो साहब से निपटना किसी मोर्चे पर विजय प्राप्त करना है। पर आज राकेश के होंठों पर मुस्कराहट नहीं आई। उसने सोचा कि शायद बड़े बाबू अभी बुला कर इसे बतायें कि नोटिस टाइप हो रहा है। थोड़ा-सा दुख प्रकट करें। भविष्य के सम्बन्ध में पूछें और सहानुभूति के दो शब्द प्रकट करके उसे सदा-सदा के लिए अपनी परिधि से बाहर कर दें।

एकाएक 'हूटर' गूँज उठा, मशीनों की गड़गड़ाहट बन्द हुई और निस्पन्द वातावरण उन्मुक्त शोर-शराबे से चमक उठा।

आज राकेश उठकर कैंटीन तक भी नहीं गया, जहाँ वह इस समय नित्य शीशे की गिलास में चाय पीने का आदी हो चुका था। वह प्रतीक्षा कर रहा था। जो कुछ अपेक्षित है हो जाय, तो अगली दिशा की ओर सोचा जाय।

किन्तु जब संध्या के पांच बज गये और उसे नोटिस नहीं मिली, तो उसे जरा आश्चर्य हुआ। धीरे-धीरे सभी साथी-संगी अपना काम बन्द कर के चले गये और वह हाल में अकेला रह गया तो उसे लगा कि भूपतलाल ने उसकी उपेक्षा की है। वह क्षुद्र है न। उसके रुदन में और सड़क पर कुत्तों की भौं...भौं में क्या अन्तर है?

रात्री बीत रही थी। किन्तु 'अमिता की आँखों में नींद का नाम न था। दिन भर तो वह व्यस्त रही। गाँव में आकर अपने कमरे को रहने योग्य बनाने में ही समय कट गया, पर अब निवाड़ के कसे हुए पलंग पर लेटने के पश्चात् उसकी स्थिति भिन्न थी। मन में भाँति

भांति के विचार उठ रहे थे। उसे गांव में आने का कारण कुछ स्पष्ट न था। केवल विवाह के लिए ही आना तो अर्थहीन प्रतीत होने लगा। जितना अधिक वह सोचती, उतनी ही परेशानी बढ़ती जाती थी। अभी तक जितने भी विवाहादि शुभ कार्य हुए वे सब शहर से ही सम्पन्न हुए थे। उसे स्मरण आया कि बाबा के विवाह के बाद से यहां पर किसी का विवाह नहीं हुआ। यहां तक कि स्वयं पिताजी का विवाह यहां से नहीं हुआ तो···तो ! स्पष्ट ही इसमें कुछ रहस्य है !

अब उसे अपने पिता से प्रातः हुई भेंट का स्मरण आया। राकेश का यहां से या आस-पास के किसी गांव से सम्बन्ध होता तो वह अवश्य बतलाता। उसे तो मेरा परिचय मालूम था। इलाके के सबसे प्रसिद्ध और धनी व्यक्ति को वह नहीं जानता होगा, कुछ बात समझ में नहीं आती। अन्यथा स्वाभाविक तौर पर परिचय के प्रथम सभा में वह कहता कि मैं भी उसी ओर का रहने वाला हूं और तुम्हारे पिताजी के नाम से परिचित हूं।

अच्छा, यह सब अचानक और एकदम क्यों हुआ ? माना कि पिताजी को मालूम हो गया था। ठीक ! फिर उन्होंने बुलाकर समझा दिया। ठीक ! राकेश के साथ विवाह कर देने को संकेत किया। यह भी ठीक।

लेकिन फिर अचानक सब टेलीफ़ोन कटवा दिये। मुझे घर से कहीं जाने नहीं दिया। चम्पा ने आकर टेलीफ़ोन नहीं करने दिया। एकाएक बिना किसी पूर्व सूचना के लिए प्रस्थान कर दिया। अब मैं यहां हूं, बिल्कुल एकान्त व अनजानी जगह में।

फिर विवाह आदि में समय लगता है। यहां आने की ऐसी शीघ्रता क्यों ? आज ही तो विवाह था नहीं।

अचानक नारी की सहज अन्तःप्रज्ञा ने समाधान प्रस्तुत किया। अरी अमिता, तू कैद कर दी गयी है।

अब उसे अपने पिता के प्रत्येक कार्य-कलाप का औचित्य स्पष्ट रूप से समझ आ गया।

तभी एक प्रश्न उठा—ऐसा क्यों? पिताजी का उद्देश्य...?

लेकिन वास्तविकता का पता कैसे चले? कुछ देर वह यों ही छत की ओर टकटकी लगाये रही। मन में आया—ले, यह मिला तुझे! जीवन में जैसे ही सत्पथ पर चलने की कल्पना की, तेरे ऊपर तेरे पापों का पहाड़ बिजली बन कर टूट पड़ा।

—तो क्या यह प्रकृतिदत्त जीवन—छोटा सौख्य पाप पर ही आधारित है? अभी तक मैं सबकी दृष्टि में आदर्श थी। और आज मोड़ लेते ही मैं, अपने प्रियतम से दूर कर दी गयी!

—संसार तू इतना कुटिल, इतना विषाक्त, इतना हृदयहीन क्यों है?

किन्तु पिताजी, तुम तो ऐसे हृदयहीन थे! बचपन में कितना प्यार किया है तुमने! मैं वही अमिता हूँ। फिर तुम क्यों बदल गये—कैसे बदल गये?

—नहीं! मैं राकेश के अतिरिक्त किसी अन्य प्राणी की कल्पना भी नहीं कर सकती। मैं मर जाऊँगी! मैंने सदा यही चाहा कि मैं एक सन्नारी बनूँ।

अब वह लेटी न रह सकी। उठकर कमरे से बाहर निकल आयी। तारों के मन्द प्रकाश में उसे अपनी माँ की आकृति दिखाई पड़ी। वे अपने कमरे के बाहर छज्जे की रेलिंग पर झुकी हुई निर्जन आँगन के प्रगाढ़ अन्धकार में न जाने क्या देख रही थी।

अमिता झट माँ के पास जा पहुँची और बोली—"माँ!"

मनोरमा का स्वप्न टूट गया। उसने अमिता की ओर घूम कर उसे ध्यान से देखा और कहा—"हाँ!"

वह उसकी मनोदशा को शायद समझ गई थी।

अमिता ने बिना किसी प्रकार की भूमिका बाँधे कह दिया—"हम

लोग यहाँ किस लिए आये हैं ?"

मनोरमा स्वयं भी तो दोपहर से कुछ इन्हीं प्रकार के सवालों में उलझी थी। रामू को लेकर भाँति-भाँति के प्रश्न उसके मन में उठे थे। अपनी पति के पास से जब वह लौटी थी, उस समय एक क्षण के लिए ध्यान आया कि उसे स्वयं अपने चरित्र को सम्हालना है। किन्तु रामू से उसका केवल वासना का ही नाता हो ऐसा न था। वह तो उसे अपने सम्पूर्ण हृदय से प्यार करती थी। उसके अतृप्त नारी हृदय को जो प्रतिदान सेठजी से अपेक्षित था वह जब उसे न मिला तभी वह रामू की शरण में गई थी। वरसों से रामू ने भी एक निष्टभाव से प्रेमी एवं पति की सम्पूर्ति की थी। संध्या होते-होते वह स्वयं ही व्याकुल हो गई थी। फिर जब भोजनोपरान्त जनानी ड्योढ़ी का द्वार बाहर से बंद हो गया तो वह समझ गई कि सेठजी ने एक ढेले से दो शिकार मारे हैं। पुत्री के साथ-साथ उसे भी इस एकान्त में लाकर क़ैद कर दिया है। उसे दुःख तो इसी बात का था कि यह सुझाव उसका स्वयं का था। साथ ही यहाँ से निकलने का एक एकमेव पथ भी उसे अमिता क विवाह ही समझ में आया। वह सोच रही थी कि विवाहोपरान्त दिव के समय जब वह बाहर निकलेगी, तो उसके पश्चात् भीतर कदम नह रखेगी और सेठजी की समस्त व्यूहरचना बेकार हो जायगी। इस घट के लिए वह सेठजी से अधिक अमिता को दोष देती थी। न वह इ प्रकार कार्य करती और न गाँव आने का प्रश्न उठता।

अमिता का प्रश्न सुनकर मनोरमा ने मन्द स्वर में उत्तर दिया- "तुम्हारे विवाह के लिए।"

"पर माँ, वह तो वहाँ भी हो सकता था।" —अमिता ने अ मन की गुत्थी उसके सामने रख दी।

मनोरमा की व्यथा ने कराह कर करवट ली। वह बोली—" तक सब प्रबन्ध होता, तब तक तो तू हम लोगों के मुँह पर का पोत देती। लड़का ढूंढ़ने में कुछ समय तो लगता ही है।"

अमिता का हृदय रो पड़ा। वह बोली—"लेकिन माँ, पिताजी ने कहा था कि वे राकेश के साथ मेरा! बस तभी से मैं उन्हें अपना पति स्वीकार कर चुकी हूँ। अब मैं किसी अन्य के साथ विवाह कैसे कर सकती हूँ?"

मनोरमा को प्रतीत हुआ कि उसी की लड़की उसका उपहास कर रही है। मानो इस कथन का स्पष्ट अर्थ यही है कि मैं सन्नारी हूँ और तुम कुलटा हो। उन्हें क्रोध आ गया। कुछ उच्च स्वर में उन्होंने कह दिया—"चल-चल! विवाह तो वंश और कुल-परम्परा के अनुसार ही होता है। इसके बाद तू जाने और तेरा आदमी। तेरे पिता को तो केवल यही मालूम है कि एक लड़का रात में तेरे कमरे में आया था। लेकिन दायी से पेट नहीं छिपता। मुझे सब मालूम हो गया है कि रोज रात को नये-नये लड़के तेरे कमरे में आते रहे हैं। तू मन-ही-मन हर एक को पति स्वीकार कर लेती है। पर हर एक से कहीं विवाह होता है पगली। जा, सो जा! तेरे कारण मैं भी यहाँ आकर कैद हो गयी हूँ?"

अमिता ने विनम्र स्वर में उत्तर दिया—"माँ! तुम माँ होकर भी एक बेटी के हृदय को नहीं समझतीं। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि मैं राकेश के बिना नहीं जी सकती।"

मनोरमा ने महज भाव से कहा—"इसमें जीने-मरने का कोई प्रश्न नहीं उठता। तुझे राकेश के साथ रहना है तो रह। विवाह हो जाने से उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।"

अमिता को लगा कि उसका पैर भटक कर किसी सर्प पर जा पड़ा है। वह उछल कर एक पग पीछे हट गई और बोली—"शर्म करो ममी, तुम माँ होकर अपनी ही लड़की को कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा दे रही हो! मानती हूँ कि जीवन में मैंने भूलें की हैं। लेकिन अनजाने में किया पाप और जानबूझ कर किये गए कर्म में अन्तर होता है जाऊँगी, पर किसी अन्य के साथ विवाह नहीं करूँगी।"

मनोरमा बोली—"ऐसे मैंने बहुत देखे हैं मरने वाले ! कहते सब हैं ! मगर मरता कोई एक है। और वैसी तू नहीं है। ऐसा ही होता तो···मेरा जी ऐसे ही दुखी है। मैं तुझसे बहस नहीं करना चाहती।

अमिता बोली—"सबके दुख का कारण मैं हूं ! तुमने पैदा होते ही मेरा गला क्यों नहीं घोंट दिया ? मैं पिताजी से भी कहूंगी !"

मनोरमा बोली—"उन्होंने ही तो यह सब प्रबन्ध किया है। वहां रहती तो तू और भी उपद्रव करती। सारे समाज में बात फैलती। जहां तेरी शादी हम लोग उचित समझेंगे, वहां करेंगे या तेरे कहने से ही किसी को भी दामाद बना लेंगे। तू चाहे इन दीवारों से सर भी फोड़ ले, मगर उसके साथ तेरा विवाह नहीं होगा। यह बात तू अच्छी तरह से समझ ले। वैसे अब मैं भी सोचती हूं कि तू न पैदा होती तो ही अच्छा था।"

क्रोधावेग में कुछ उत्तर न देकर अमिता पैर पटकती हुई तेजी से अपने कमरे में वापस चली गई। विरहाकुल राधिका की भांति वह इधर-से-उधर बड़ी देर तक कमरे में ही चक्कर काटती रही। मां के शब्दों का स्मरण आता और उसकी भावना को तीव्र से तीव्रतर शिखर पर पटक देता।

शनैः शनैः उसको बोध होने लगा कि उसकी सम्पूर्ण चेष्टा व्यर्थ है। जब अपनी सगी मां के उसके प्रति ऐसे विचार हैं, तो वह किससे सहानुभूति की आशा करे ! अपने प्रति उसका मन घृणा से भर गया।

तटस्थ होकर जब उसने स्थिति का अध्ययन किया तो एक ही बात उसकी समझ में आई कि उसे अपने इन पापों के लिए प्रायश्चित्त करना है, जिनका प्रयोग उसने वासना की विविध प्रकार की मांगों तथा कल्पनाओं को मिटाने के लिए किया है। उसके मन में आया—आत्मा का सुख, कलुपित तन से नहीं प्राप्त हो सकता। आज उसकी मां को उसके विगत के सम्बन्ध में सब कुछ मालूम हो गया है तो कल, जब राकेश को मालूम होगा, तो क्या उसका प्रेम भी घृणा में बदल जायगा ?

उसका जीवन, उसकी आस्था, उसका विश्वास और उसका प्रेम सब कुछ सम्पूर्ण जीवन-सौख्य नष्ट हो जायगा।

प्रश्न उठा—तब क्या उस समय मैं उसकी आँखों में विषाद और घृणा पाकर सुखी रह सकूँगी ! मेरे जीवन में तो आग लग ही गई है, तो अब मैं औरों का भी सुख-चैन क्यों राख कर दूं ?

—नहीं, वह मुझे प्यार करता है। मुझे वह देवी समझता है। मैं देवी ही बनूंगी। अन्यथा मेरे जीवन का कोई महत्व नहीं ! तिल-तिल कर के बरसों घृणा और उपेक्षा का जीवन व्यतीत करने से प्यार का एक क्षण अधिक श्रेयस्कर तो है। मैं उस क्षण को अमरत्व प्रदान करूँगी। भले ही माता-पिता की दृष्टि में मैं कुलटा रहूं। किन्तु राकेश के हृदय में मैं ऐसी भावना को कदापि जन्म न लेने दूंगी। मुझे इस बात का गौरव तो होगा कि कम-से-कम एक व्यक्ति तो मुझे देवी मानता है। और इस सुख को मैं नष्ट न होने दूंगी !

उसके नेत्रों से आंसू बह रहे थे। किन्तु अधरों पर अलौकिक सुख की आभा और दृढ़ विश्वास की मन्द मुसकान थी।

अब वह शान्त थी। उसने सूटकेस से फाउन्टेनपेन और लेटरपैड निकाला। मेज पर बैठकर उसने पहले लैम्प की बत्ती ऊँची की फिर वह पत्र लिखने बैठ गई।

लाला हरचरणसिंह ने ड्राइंगरूम में जैसे ही प्रवेश किया, तो उनकी दृष्टि सोफ़े के ऊपर जा पड़ी। आशा के विपरीत राकेश को न देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। झट ध्यान आया कि बाथरूम चला गया होगा। तभी उनकी दृष्टि सेण्टर टेबुल के ऊपर रखे हुए बादामी कागज पर जा पड़ी। दूर से ही उस पर कुछ लिखा देखते ही उनका कौतूहल जागा और उन्होंने उसे उठाकर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

वे पत्र पढ़ते जाते थे और मन-ही-मन राकेश के चारित्रिक दृढ़ता के प्रति मुग्ध हो रहे थे।

उनके मन का स्नेह शत-शत कंठ से उसे आशीर्वाद दे रहा था। उसके साहस की और वास्तविकता का सामना करने की इच्छा और चल-पौरुष के विश्वास को देखकर उनके मन में श्रद्धा ने जन्म लिया। कुछ क्षण वे खिड़की के बाहर फैले हुए दृश्य को देखते रहे।

अब मन में आया—निश्चय ही यह असाधरण व्यक्ति है। लोभ तो इसे छू नहीं गया। यह एक दिन अवश्य सफल होगा। उन्होंने घड़ी की ओर दृष्टि डाली। नौ बज रहे थे।

मन में आया कि वे उसके घर जाकर उसे ले आयें। फिर प्रश्न उठा—घर तो मालूम ही नहीं। फिर न जाने क्यों, उनके मन में आया कि संध्या को मिल से जब निकले, उस समय उसे पकड़ लिया जाय। मिल का ध्यान आते ही उन्हें भूपतलाल का स्मरण आया।

वे उठ कर खड़े हो गये। तभी चाय के प्याले के साथ बलवन्त ने कमरे में किया। उसे देखते ही उनके मन में कुछ आया और वे बोले—"बलवन्त, अंजू कहाँ है?"

अंजू का नाम सुनते ही बलवन्त के निष्प्रभ नेत्रों में वात्सल्य और ममता के ज्योति-पुंज प्रदीप्त हो उठे। उसने कुछ 'गों-गों' करते हुए कुछ संकेत से बताया कि वह नहा रही है।

अब लालाजी पुनः बैठ गये और उससे चाय का प्याला ले एक घूंट पिया और उसे अपने निकट आने का संकेत करके अत्यन्त मन्दस्वर में बोले—"अंजू बड़ी हो गई है।"

बलवन्त मानो उनकी बात सुन रहा था। अत्यन्त समझदारी के साथ बड़ी गम्भीर मुद्रा में सर हिलाकर कह दिया—"हाँ।"

अब लालाजी बोले—"तो उसका विवाह कर देना चाहिए।"

बलवन्त ने कुछ इस प्रकार की मुद्रा बनायी कि जैसे उसे आश्चर्य हो कि आज तक उसने यह क्यों नहीं सोचा! विचारमग्न और गम्भीर

वाणी में इस तथ्य का समर्थन करने के लिए उसने पुनः सर हिलाया।

अब लालाजी ने मुंह से कुछ न कहकर, पहले सेण्टर टेबुल पर प्याला रखा फिर सोफ़े की ओर संकेत किया। साथ ही कुछ इस प्रकार हाथ नचाया कि वह प्रश्न बन गया—"इस लड़के राकेश के विषय में क्या राय है ? मन्जू के वर के रूप में कैसा रहेगा।"

बलवन्त ने सूने सोफ़े की ओर देखा। कुछ देर तक वह उधर ही देखता रहा। मानो अपने मानस नेत्रों से वह राकेश को वहीं पर बैठा-लेटा देख रहा है। फिर उसने लालाजी के मुख पर दृष्टि डाली और स्वीकृति स्वरूप सर हिला दिया। साथ ही उसके नेत्रों ने एक प्रश्न उठा और उसने फिर कुछ संकेत किया। पहले उसने कागज पर लिखने का, फिर दोनों हथेलियों को मिलाकर पुस्तक पढ़ने का अभिनय किया।

लालाजी उसका प्रश्न समझ गये। वे सर हिलाते हुए बोले— 'हाँ, पढ़ा-लिखा है।"

अब बलवन्त ने कमरे की दीवारों को संकेत से दिखाते हुए हाथ नचाया, साथ ही अँगूठे को रुपया उछालने की मुद्रा बनायी।

लालाजी बोले—"हाँ, घर-द्वार है। रुपया पैसा भी है। नौकरी करता है। घर में खेती होती है।"

प्रत्येक के साथ वे सर हिलाते और सकेत भी करते जाते थे।

अब बलवन्त ने सर हिलाया, तो लालाजी समझे उसे पसन्द है। किन्तु तभी प्रश्न उठा—वह स्वीकार करेगा ? उसके पिता··· ? फिर वास्तविकता का भी तो पता नहीं है।

उनके कंठ से एक उच्छ्वास उद्भासित हो गया। मन-ही-मन वे बोले—"*एक कन्या का पिता होना अपने आप में एक अभिशाप है। फिर एक अभिशाप कन्या का पिता !*"

मन-ही-मन वे परमपिता जगत नियंता का स्मरण कर उठे। अब उन्होंने भगवान से प्रश्न किया—"किस पाप का दंड दे रहे हो परम पिता। मैंने पाप किया होगा ? सम्भव है कि निर्दोष प्रतिमा ने पाप

किया हो ? अबोध अंजना ने क्या पाप किया है ? तुम्हारी सृष्टि में जन्म लेना तो पाप नहीं है ! तुम्हीं तो जन्मदाता हो, तुम्हीं कारक हो, तुम्हीं कर्त्ता हो ! मेरी पुत्री को सुखी बना दो, मैं जन्म-जन्मांतर तक असहनीय दुर्दान्त पीड़ा का आलिंगन करने के लिए प्रस्तुत हूँ।"

लालाजी के नेत्रों से आंसू बह निकले। बलवन्त ने देखा और उनके हृदय के मूक रुदन को सुनकर उसका मानस भी उद्वेलित हो उठा। बरसों के संग-साथ ने सेवक भाव को भुला दिया और उसने अत्यन्त आत्मीय स्वजन की भांति लालाजी के मुख को अपने वक्ष में छिपा लिया, उनके सर एवं पीठ पर हाथ फेरने लगा। मानो वह पिता हो और लाला जी एकमात्र पुत्र।

तभी अंजना पर्दा हटाकर कमरे में आ पहुँची। यह दृश्य देखकर वह अवसन्न रह गई। उसका चकित, विस्मित हृदय किसी अज्ञात आशंका की कल्पना से विचलित हो उठा। भीता हिरणी की भांति वह अपने पिता से जाकर लिपट गयी और अश्रु विगलित स्वर में चीख उठी—"पिताजी !"

बलवन्त अलग हट गया और अपने आंसू पोंछता हुआ निशब्द पिता और पुत्री को एकान्त में छोड़ कर बाहर चला गया।

आंसू बहा देने से हृदय की व्यथा कम हो जाती है, मन का उत्पीड़न शान्त हो जाता है। पुत्री का स्वर सुन कर लाला जी चैतन्य हो गये और उनके मन में अपनी क्षणिक दुर्बलता के आवेग के कारण किंचित् क्षोभ उत्पन्न हो उठा।

अविलम्ब अंजना बोली—"मेरे न जाने के कारण आप दुखी हैं क्या ? पर इसमें परेशान होने की कोई बात नहीं। आप तो जानते ही हैं कि मैं सदैव नहीं-नहीं कहती रही हूँ। मैं चली जाऊंगी। मेरे कारण आपको कोई कष्ट न होने पायेगा, इसका मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ।"

अबोध अंजना ने लालाजी के दुख का कारण न समझा। पर यह

तो सत्य ही था कि वे उसी के कारण दुखी थी।

लालाजी ने अत्यन्त स्नेहपूर्ण दृष्टि से उसे देखा, फिर एक रुदनपूर्ण मुस्कान उनके होठों पर मुद्रित हो गयी। वे बोले—"नहीं बेटी! तू नहीं जायगी। मैंने ही तो तुझे रोका है। तू नहीं जानती कि मैं कितना सुखी हूँ।"

अंजना का ध्यान अचानक अपनी माँ की ओर चला गया। उसने भयाकुल हो प्रश्न किया—"तो क्या डाक्टर साहब ने अम्मा के विषय में कुछ कहा है?"

अब लाला जी हँस पड़े और बोले—"अरे नहीं पगली! तेरा बचपना नहीं गया।"

अंजना ने अपने शरीर में एक कसाव का अनुभव किया। कल से ही उसे लगने लगा था कि अब वह बच्ची नहीं है। उसके कान में पिता के शब्द पुनः गूँज उठे—"अंजू उसे देख ले।"

प्रश्न उठा—"किसे?"

निर्विकार भाव से चेतना शून्य राकेश परिचित रास्ते पर अपरिचित-सा चलता हुआ अपने घर आ पहुँचा। उसके बाह्य-व्यवहार से अन्तराल में छिपी हुई वेदना का आभास नहीं होता था। द्वार खोलते समय अचानक एक उच्छ्वास उसके मन के अतल, असीम गह्वर से निकल गयी। वह जड़ हो गया। समस्त दिवस वह अपने को किसी प्रकार नियन्त्रित करता रहा था। किन्तु अब प्रतीत हुआ कि वह टूट गया है!

नित्य के प्रतिकूल उसने चारपाई की शरण ग्रहण की। कपड़े तक नहीं बदले। यों ही बिना बिस्तर बिछाये, खरहरी खाट पर, धूलि-धूसरित घिसी ऐड़ी वाला काला जूता पहने ही लेट गया। बोझिल वातावरण और भी बोझिल हो उठा।

तप्त हृदय की ज्वाला एक निःश्वास बन कर कंठ से फूट पड़ी और

अचानक वह रो पड़ा। आँसू बह कर गालों के सीमा-प्रदेश को पार करके उसके छोटे से कमरे की कच्ची भूमि को सींचने लगे। कुछ देर के बाद उसके कण्ठ से अस्फुट स्वर निकला—मुझे इस की कल्पना भी न थी। संसार इतना निर्दयी है।

कुछ ही देर में सब शान्त हो गया। उसने सोचा—मैंने तो एक छोटी-सी गृहस्थी का स्वप्न देखा था। अपना एक साम्राज्य बनाने की चेष्टा की थी। एक ऐसा संसार, जिसमें किसी वस्तु का अभाव न हो। कोमल-सी पत्नी की इच्छा की थी।

तभी उसे पुनः ध्यान आया, अमिता का। मन में आया कि चलकर उससे भेंट करना चाहिये। सम्भव है वह उसी की भाँति निर्दोष हो!

इतने में द्वार की कुंडी खटक उठी। उसका ध्यान भंग हो गया। उसकी समझ में नहीं आया कि उसके पास कौन आ सकता है। मकान-मालिक तो आया नहीं, उसे लेकर उपस्थित होने वाले किरायेदार के यहाँ भला मकान मालिक क्यों आने लगा?

फिर ध्यान आया—लालाजी तो नहीं हैं। किन्तु उनको घर नहीं मालूम। शायद मिल से पता लेकर आये हों! पर वह तो स्वयं ही इतवार को मिलने के लिए पत्र लिखकर आया है।

तो...तो...कौन! अरे हाँ अमिता! मैं तो भूल ही गया था। वही होगी...वही...।

तभी कुंडी पुनः खटकी और वह कूद कर उठ खड़ा हुआ। अति उत्साहित और उमंग भरे मन से उसने द्वार खोल दिया।

द्वार खोलते ही उसके मन में निराशा का अंधकार घिर गया। सामने सूटेड-बूटेड नवयुवक खड़ा था। उसका समवयस्क शालीनता व सौजन्य प्रतीक, साक्षात कामदेव-सा मोहक।

राकेश के मन में आया—बेचारा ग़लती से मेरा द्वार खटखटा बैठा है। फिर उसने शिष्टाचार वश हाथ जोड़ दिये और पूछा—"कहिये, किसको पूछ रहे हैं?"

प्रत्युत्तर में उस युवक ने हाथ जोड़ कर अभिवादन किया और

कहा—"राकेश जी का यही मकान है ?"

राकेश विस्मय से रोमांचित हो उठा। उसके मन में आया—चलो अच्छा हुआ कि इस स्थल पर प्रकाश का अभाव है, अन्यथा मेरे मनोभाव इससे छिपे न रहते।

चेष्टा करने पर भी उसकी वाणी से आश्चर्य प्रकट हो उठा। वह बोला—'मेरा ही नाम राकेश है।"

कथन के साथ ही वह एक ओर हो गया और शिष्टाचारवश उसे अन्दर आने का संकेत करता हुआ बोला—"पधारिये।"

युवक के अन्दर पग रखते ही उसने झट से आगे बढ़ कर शीशे का छोटा सा लैम्प जला दिया।

अब राकेश ने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। उस लैम्प के मन्द प्रकाश में भी उसे उस युवक को बैठाने लायक कोई स्थान या आसन न दिखाई दिया तो उसने झट से खाट के ऊपर का बिस्तर खोल दिया और किंचित् खेद भरे स्वर में बोला—"विराजिये।" साथ ही उसे ध्यान आया आगन्तुक का आधुनिकतम सिला बहुमूल्य सूट।

वह कुछ कहने जा ही रहा था कि खाट पर बैठ गया और स्निग्धता से बोला—"मेरा नाम अमृतलाल है। आप नहीं पहचान सकते। क्योंकि मैं एक सप्ताह पहले ही जर्मनी से आया हूं।"

राकेश शिष्ट वाणी में बोला—"मेरा सौभाग्य है कि आपके दर्शन प्राप्त हुये। कैसे कष्ट किया ?"

अमृतलाल के अधरों पर तरल-मुसकान तरंगित हो उठी। वह बोला—"मेरी भाभी जी ने आपको बुलाया है।"

विस्फारित नेत्रों से राकेश उसे देखता रह गया। फिर अचानक ध्यान आया—हो न हो! इस अमृतलाल को अमिता ने ही भेजा होगा। सम्भवतः उसने अपनी किसी आत्मीया से विवाह के सम्बन्ध में अपना निश्चय प्रकट किया होगा और अब मुझे निमन्त्रण प्राप्त हो रहा है। क्या संसार भर के आश्चर्य और चमत्कार एक साथ ही घटित होंगे। परन्तु अभी उसके मन का आश्चर्य शान्त भी हुआ था कि द्वार पर किसी की

छाया दिखाई पड़ी। अब पुनः प्रश्न उठा—कौन हो सकता है?

तभी स्वर आया—"बादशाहो!"

राकेश सचमुच स्तब्ध हो उठा और आगे बढ़कर बोला—"आइये लालाजी! धन्य भाग, कुटिया पवित्र हो गयी। लेकिन आपको मेरा पता कैसे मालूम हुआ?"

लाला हरचरणसिंह भीतर आ चुके थे। उनको आते देख कर अमृतलाल खड़ा हो गया था। उसकी ओर देखते हुए लालाजी ने कहा—"तो आप अमृतलाल हैं! भई इन्हीं के यहाँ से तुम्हारा पता मिला है बादशाहो।"

लाला जी का मुख अमृतलाल की ओर था, जिसने अपना नाम उनके मुख से सुनकर सभ्यतावश हाथ जोड़ दिये थे और वे उत्तर दे रहे थे राकेश को।

अमृतलाल ने किंचित विस्मय के साथ पूछा—"जी, मेरे यहाँ से?"

लालाजी मन्द हास की विद्युच्छटा बिखरते हुए बोले—"जी जनाब। देर न करो, बस चल दो। मुझे यों ही देर हो गयी है। तुम भी कमाल करते हो बादशाहो।"

राकेश किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा खड़ा रहा।

लालाजी को आनन्द आ रहा था। वे पुनः बोले—"जल्दी, भाई जल्दी! वो बलवन्त है न, नाश्ता तैयार किये बैठा होगा। उँहू, तुम तो अभी तक खड़े ही हो बादशाहो।"

राकेश ने परिस्थिति की गुत्थी का सिर हाथ में पकड़ा और झट से कह दिया—"मगर इनकी भाभी जी भी तो प्रतीक्षा कर रही हैं। और यह पहले आये हैं। वहाँ से होकर मैं आता हूँ।"

लालाजी बोले—"ना···ना···वहाँ कोई इन्तजार नहीं कर रहा है। मैं कह आया हूँ। मुझसे ज्यादा तुम्हारे ऊपर इनका हक़ होते भला मैं देख सकता था बादशाहो!"

राकेश की समझ में ही न आ रहा था कि वह क्या करे! भाभी ने भी एक समस्या का रूप धारण कर लिया है। एक बुलाने आया है

और दूसरा कह आया है कि नहीं आयेंगे। प्रश्न उठा—इनको क्या अधिकार है ? मैं अमिता के सम्मुख सम्पूर्ण संसार त्यागने को तैयार हूँ।"

लालाजी की वार्ता का रोग पूर्ण विकास पर था। वे बोले—"मैंने इनके भाई और भावज दोनों को बता दिया है कि अभी उसका शरीर इस लायक नहीं है, भला ऐसे में कोई मारा-मारा फिर सकता है ! एक बात और है। तुम क्यों जाओ ? वे स्वयं क्यों न आवें ? कल संध्या को चाय पर आ रहे हैं। अब तुम चलो भी, बात समझा करो बादशाहो।"

राकेश को लाला जी के कथन में एक संकेत का आभास हुआ। उसे ऐसा भान हुआ कि मानो वे कह रहे हैं कि भला लड़के वाले जाते हैं कहीं, वे लड़की वाले हैं, उनको स्वयं ही प्रस्ताव लेकर आना चाहिये।

लालाजी अपने उन्माद में केवल एक क्षण के लिये रुकते और फिर टूटी कड़ी जोड़ देते। किसी को बोलने का अवसर ही न मिलता। मानो उन्हें उत्तर की अपेक्षा ही न हो। अब वे बोले—"आप भी मेरे गरीबखाने पर चलिये। एक प्याला चाय तो हो जाय।"

कथन के साथ हो"'हो"'कर हँस पड़े।

अमृतलाल ने हाथ जोड़ कर क्षमायाचना करते हुए कहा—"आज तो क्षमा करें। मैं फिर किसी दिन आऊँगा। एक दोस्त का स्कूटर माँग के आया हूँ। उसे वापस भी करना है और उसी के साथ एक गोष्ठी में जाना भी है।"

लालाजी बोले—"तो फिर तय रहा कि आप आयेंगे। खुद आयेंगे या बुलाने आना पड़ेगा ?"

विनयावनत स्वर में अमृतलाल ने मन्द हास के साथ कहा —"मैं स्वयं हाजिर हो जाऊँगा।"

लालाजी बोले—"अच्छी बात है।" फिर राकेश को संबोधित कर बोले—"चलो भाई, देर न करो। मैं तो घबरा चला हूँ बादशाहो।"

राकेश बोला—"सिर्फ पाँच मिनट ! कपड़े बदल लूँ।"

तभी अमृतलाल बोला—"अच्छा तो अब मुझे आज्ञा दीजिए। मैं जल्दी में हूँ।"

राकेश बोला—"अच्छी बात है। लेकिन यह भेंट अधूरी रही। बातें होगीं। आप से परिचय हो गया—इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूं।

अमृतलाल ने दोनों को नमस्कार किया। फिर वह चला गया।

राकेश के मन का विकार नष्ट हो चुका था। वह प्रफुल्लता को दबा कर लालाजी से बोला—"आप दो मिनट बैठिये। मैं अभी तैयार हो जाता हूं। देर नहीं लगेगी। बस चुटकी बजाते ही मैं फटाफट रेडी हुआ—बिलकुल 'रेडीमेड'।"

कथन के साथ ही उसने अलमारी से प्लास्टिक की साबुनदानी उठायी और खूंटी पर से चारखाने का लाल गमछा उतार कर कन्धे पर रक्खा। कमरे में ही एक ओर मोरी बनी थी, लोटा-बाल्टी रखा था। वह झट से मुंह हाथ धोने बैठ गया।

लालाजी की दृष्टि से उसका परिवर्तन छिपा न रहा। एक संतोष की सांस उनके अन्तराल में उठी। प्रदर्शन अशोभनीय न हो जाय और राकेश के मन को आघात न पहुंचे इसीलिये लाला जी मौन रह गये।

राकेश अपने विचारों में मग्न था। बालों में तेल लगाने के बाद शीशे में देख-देख कर बाल संवारते समय अपनी उत्कंठा शमन न कर सकने के कारण उसने लालाजी से कह दिया—"आपके आ जाने से बच गया। नहीं तो अमृतलालजी के साथ जाना ही पड़ता। वैसे ये सज्जन हैं कौन?"

लालाजी ने पूछा—"अरे, तुम नहीं जानते बादशाहो!"

राकेश बोला—"जी नहीं। आज पहली बार भेंट हुई; अचानक आ धमके और कहने लगे—भाभीजी ने बुलाया है। मेरी तो कुछ समझ में ही न आया कि ये भाभीजी हैं कौन। मैं तो उन्हें जानता नहीं।"

लालाजी बोले—"ये भूपतलाल का भाई है। उनकी पत्नी ने तुम्हें बुलाया था। असल में भूपतलाल को बहुत अफसोस है। मैं मिला तो बेचारे तुम्हारी बड़ी तारीफ करने लगे। सच पूछो तो तुम हो भी तारीफ के लायक, बादशाहो!"

राकेश ने सोचा—'यह सब है क्या? पहले तो गरदन काट दी

और अब गोंद लगा कर जोड़ रहे हैं।'

फिर विचार आया—'सचमुच क्या युग करवट ले रहा है ? संसार बदल रहा है। मेरी दृढ़ता और स्थिरता के फलस्वरूप मेरी विजय हो रही है। किन्तु अमिता··· ? सोचकर एकाएक उसका सारा उत्साह ठंडा हो गया।'

किन्तु अन्य उपाय न देख अनिच्छा होने पर भी उसे लालाजी के साथ जाना पड़ा।

अमिता के जाने के पश्चात् भी मनोरमा वहीं खड़ी रही। भूत और भविष्य में उसके विचार चक्कर काटते रहे। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उसकी उद्विग्नता बढ़ने लगी। जब पूर्व में क्षितिज पर ऊषा की लालिमा छा गई, उस समय भी वह वहीं खड़ी थी। किन्तु उसका मस्तिष्क शून्य था। शून्य दृष्टि से विराट शून्य की ओर देख रही थी।

तभी नीचे के खण्ड में कुछ खटपट प्रारम्भ हुई। एकाएक रसोईघर से धुआँ उठने लगा। नौकरानियों ने अपना कार्य प्रारम्भ किया तो सोते हुए मकान की जगहर के साथ मनोरमा का भी ध्यान टूटा। मानो वह भी सो रही थी और अब जागी हो।

उसने कुछ उच्च व कठोर स्वर में चम्पा को बुलाया। चम्पा के आते ही उसने सेठजी को बुलवा भेजा।

सेठजी स्वयं ही इस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनका विचार था कि यह विस्फोटक स्थिति मनोरमा या अमिता के कारण देर-सबेर अवश्य उत्पन्न होगी। इसके लिए वे तैयार थे। परन्तु उन्होंने शीघ्रता न की। कुछ देर यों ही करवटें बदलते रहे। फिर उन्होंने कन्हई को बुलाया और कहा—"तुम तो जानते हो कि हम लोग यहाँ किस लिए आये हैं ! अमिता कुछ-न-कुछ गड़बड़ करेगी। एक बात और भी है मैंने रामू को कल शहर भेजा था। अगर वह वापस आये तो ध्या

रखना, अब वह भीतर न जाने पाये। किसी-न-किसी बहाने से उसे बाहर ही रोक देना। आँखों से दूर रहने पर शायद मनोरमा उसे भूल सके। अब मैं सुखी होना चाहता हूँ।"

कन्हई बोला—"यह बड़ा अच्छा किया बच्चा। मैं उसको जनानी ड्योढ़ी की ओर कदम न रखने दूँगा।"

अब सेठजी उठे और भीतर की ओर बढ़ गये। उनको आता देखकर प्रत्येक प्राणी व्यस्त हो गया।

आँगन में पैर रखते ही सेठजी की दृष्टि मनोरमा पर पड़ी। उन्हें आशा न थी कि वह भज्जे पर खड़ी मिलेगी। वे पुराने ढंग की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे, तो उन्हें आभास हुआ कि घुटनों में कुछ दर्द हो रहा है। कठिनाई से, हाँफते हुए वे ऊपर पहुँचे और मनोरमा को अन्दर आने का संकेत कर, वे उसके कमरे में जाकर पलँग पर ढेर हो गये।

आक्रमण की नीति उन्होंने पहले से ही निर्धारित कर रखी थी। अतः उसे बोलने का अवसर न देकर वे बोले—"अमिता ने कुछ उछल-कूद तो नहीं मचाई।"

सेठजी का उद्देश्य सफल हुआ। मनोरमा ने एकाएक अमिता की चर्चा चल जाने के कारण पहले रामू के विषय में कुछ पूछना उचित न समझा। वह बोली—"वह कहती है कि मैं उसी लड़के से ब्याह करूँगी। क्या नाम है राकेश! भला सोचने की बात है कि उसके साथ हो सकता होता तो हम लोग यहाँ क्यों आते!"

सेठजी ने अत्यन्त कुशल अभिनेता की भाँति कहा—"सच पूछो तो वह ठीक ही कहती है। इसका मतलब तो यही है कि जो लड़का उसके कमरे में था, उसको छोड़कर वह दूसरे के साथ सम्बन्ध रखने की उसकी इच्छा नहीं है।"

मनोरमा को आभास भी न हुआ कि वह मकड़ी के जाल में फँस रही है। वह मुँह बिदोर कर कुछ व्यंग्यात्मक स्वर में बोली—"मैंने तो स्पष्ट कह दिया कि विवाह तो वंश-परम्परा के अनुसार ही होगा। तो वह बोली कि मैं मर जाऊँगी, पर अन्यत्र विवाह न करूँगी।"

सेठजी बोले—"वह ठीक कहती है। भारतीय नारी का यही आदर्श है। मैं सोचता हूँ कि इसमें हर्ज ही क्या है? आजकल तो अन्तर्जातीय विवाह होने लगे हैं। कम-से-कम यह हिन्दू तो है। किसी एक का होकर रहने का सुख ही और होता है।"

मानो मनोरमा के तन-बदन में आग लग गयी हो। उसे लगा कि इन्होंने मेरे ऊपर सीधा प्रहार किया है। क्रोध के कारण उसका मुख तमतमाकर लाल पड़ गया और बदन काँपने लगा। वह बोली—"हाँ जी, मैं जानती हूँ कि वह कितनी सती-सावित्री है। तुम क्या जानो? मैंने सब पता लगा लिया है। न जाने कितने लड़के उसके कमरे में आ चुके हैं। रोज़ ही तो एक नया लड़का अपने साथ लाती थी। वेश्या कहीं की! वह कैसी कहावत है नौ सौ चूहे खा कर···।"

सेठजी ने संयत भाव से उत्तर दिया—"अपनी लड़की को वेश्या कहते तुम्हें लाज नहीं आई! मैं मानता हूँ कि उसने ग़लती की होगी। लेकिन अब तो उसे अपनी भूल का पता लग गया। वह सुधरना चाहती है। भगवान उसे सुखी रखे, बड़ी तेजस्वी लड़की है। उसे बुलाओ न? अगर वह लड़का, क्या नाम है राकेश, ठीक-ठाक हो तो उसी के साथ ब्याह कर दें।"

सेठजी को अमिता से ऐसी आशा न थी। उनका विचार था कि पत्नी को प्रभावित करने के लिए उन्हें अमिता को ऊँच-नीच समझाना पड़ेगा। वे आदर्श उपस्थित करके धीरे से मनोरमा के मन में ग्लानि उत्पन्न करने की चेष्टा कर रहे थे।

परन्तु यहाँ आदर्श उपस्थित किया उसी अमिता ने। उनके मन में आया—वास्तव में राकेश के साथ इसका सम्बन्ध कर देने से अमिता सुखी भी होगी और सन्मार्ग पर चल निकलेगी। उस दशा में मनोरमा भी रामू को भूल जायगी।

उधर मनोरमा की मनोदशा बड़ी विचित्र हो गयी। उसे आशा ही न थी कि रूढ़िवाद के कट्टर पुजारी सेठजी अमिता का पक्ष लेकर उसे जीवित ही मरणासन्न कर देंगे।

तभी सेठजी ने उसे विचारमग्न देखकर स्वयं ही अमिता को पुकारा। एक क्षण में चम्पा ने आकर सूचना दी कि वह सो रही है, तो उन्होंने उसे जगाने का आदेश दिया। उनका विचार था कि इस समय स्थिति उनके पक्ष में है और अवसर से पूर्ण लाभ न उठाना मूर्खता होगी। पता नहीं फिर ऊँट किस करवट बैठे। लोहा ठंडा होने पर जब कड़ा हो जाता है, तब उसे झुकाना कठिन हो जाता है।

तभी चम्पा ने आकर सूचना दी कि अमिता के कमरे का दरवाजा बन्द है और काफी आवाज देने पर भी नहीं खुला।

एक अज्ञात आशंका से सेठजी का हृदय काँप उठा।

मनोरमा का चेहरा पीला पड़ गया। एक अस्फुट चीत्कार उसके कण्ठ से निकल पड़ी। "उसने सचमुच कहीं...!"

अधूरा कथन छोड़कर वह उठी और अमिता के कमरे की ओर दौड़ी।

सेठजी ने भी उसका अनुसरण किया। दोनों दरवाजा पीटते रहे। मनोरमा के नेत्रों से वर्षा की उमड़ती नदी बन गयीं। शोर-गुल सुन कर सभी एकत्र हो गए। कन्हई ने पहले तो नीचे से देखा। फिर वह दौड़ कर ऊपर आ गया और अपने वृद्ध शरीर का समस्त बल लगा कर कन्धे से द्वार को उखाड़ फेंकने में जुट गया। परन्तु पुराने जमाने का का दरवाजा टस से मस न हुआ।

सेठजी ने चिल्ला कर आदेश दिया—"कुल्हाड़ी लाओ और दरवाजा तोड़ दो।"

सारे नौकर-चाकर फट पड़े। कुल्हाड़े पर कुल्हाड़े चले और अन्त में महारथी योद्धा की भाँति द्वार का वक्ष विदीर्ण हो गया।

अन्दर दृष्टि पड़ते ही मनोरमा चेतना शून्य होकर गिर पड़ी। सभी चीत्कार कर उठे।

सेठजी की दृष्टि, पलंग पर तिरछी पड़ी अमिता पर जा पड़ी। उन्होंने आगे बढ़ कर कहा—"बेटी तूने अपने पिता पर भी भरोसा न किया।"

कन्हई ने बढ़ कर न पकड़ा होता तो वे शायद धरती पर गिर जाते।

सेठजी ने तुरन्त अपने को सम्हाल लिया और पलंग के निकट जा कर उसे देखा। समीप पड़ी हुई छोटी-सी खाली शीशी पर दृष्टि पड़ते ही वे चैतन्य हो बोले—"इसे अस्पताल ले चलने का प्रबन्ध करो। जल्दी करो। मोटर में लिटा दो।" मन-ही-मन वे भगवान का स्मरण कर लगे।

लाला हरचरणसिंह के पीछे सीढ़ी पर चढ़ते हुये विस्मित राकेश का हृदय आशा और शंका के ज्वार-भाटे में उतर रहा था कि प्रभु की लीला अपरंपार है। कल इतना अपमानित हुआ, तो आज सभी मुझे सर आँखों पर बैठा रहे हैं। भूपतलाल ने अपने भाई को भेजा। लाला जी अपने आप अपना भेद खोल रहे हैं। इसका मतलब तो यह हुआ कि अब अमिता की पारी है। इसका भी सन्देश आना चाहिए। उसे क्या मालूम था कि सन्देश क्या होगा। मनुष्य को इसका कहां पता रहता है?

तभी लालाजी ने द्वार से पर्दा हटाकर उसे अन्दर आने का संकेत किया। कल्पना के घिरौंदे से निकल कर वह वास्तविक जगत में आ गया। दृष्टि उठाकर उसने देखा कि सब कुछ वैसा ही है, केवल बीच में एक मेज और है, जिस पर नाना प्रकार के चाय के संगी साथी सजे हैं। अब वह आगे बढ़ा और उसने प्रतिमा के चरण स्पर्श कर लिए।

प्रतिमा ने मृदुल स्वर में आशीर्वाद देते हुए कहा—"जीते रहो बेटे। सदा सुखी रहो।"

लालाजी बोले—"तुमने अपनी चाची को खूब पहचाना। देखा, मैंने कहा न था कि आजकल बड़ी विचित्र बातें हो रहीं हैं! मैं समझता हूँ कि चार दिन में तुम उन्हें उठाकर खड़ा कर दोगे। सच पूछो तो मैं इनकी रोनी सूरत देखकर घबरा जाता था। अब कल से बात ही निराली है सब तुम्हारा कमाल है बादशाहो।"

राकेश मुसकराने लगा। कुर्सी पर बैठता हुआ वह बोला—"सब भगवान की कृपा है। सच मानो चाचीजी, मुझे तो ऐसा लगता है कि मैं भटक कर बिछड़ गया था और अब आपको पाकर मानो मैं अपनी सगी मां को पा गया हूं।"

प्रतिमा के अधर कमल की भांति खिल उठे। दन्तावलि की मुक्ता-छटा बिखेरती हुई वे बोली—"मैं न जाने कब से तुम्हारी राह देख रही थी। तुम पहले आ जाते, तो मेरा दुख पहले ही समाप्त हो जाता।"

राकेश उत्तर भी न दे पाया था कि अंजना ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथों में गरम पकौड़ियों की प्लेट थी। मेज पर रखते हुए उसने राकेश की ओर देखा और नमस्कार की मुद्रा में हाथ जोड़ दिया।

राकेश को ऐसा प्रतीत हुआ कि यही तो है, जिसकी मैं कल्पना करता था, छोटी गुड़िया-सी।

लालाजी ने उसकी प्रतिक्रिया देखी। यद्यपि वास्तविकता का आभास किसे प्राप्त होता है? चमकते हुए पीतल से सोने का भ्रम हो जाता है। लाला जी ने भी उसकी आंखों में चमक देखकर समझा कि बात बन गयी।

वे तपाक् से बोले—"ये है अंजू! मेरी बेटी। पूरा नाम है अंजना। बी० ए० पास किया है। पर है बड़ी शैतान बादशाहो।"

राकेश ने अंजना का संकोच देखा तो बड़ा भला लगा। उसके नमस्कार के प्रत्युत्तर में वह उमंग से लहरा कर बोला—"खुश रहो बहन। खूब शैतानी करो। विश्वास रक्खो तुम्हारा भाई हमेशा तुम्हारा पक्षलेगा।"

प्रतिमा के मन की प्रतिक्रिया अभी तक उसके मुख पर न झलकी थी। वह मन में सोच रही थी कि चलो अच्छा ही है। कम से कम उसे भाई का आश्रय तो मिला। किन्तु लाला जी के मन की निराशा उनकी आंखों में परिलक्षित हो उठी।

वे विचार में पड़ गये और बोले—"अंजू जा कर बलवन्त को भेज। चाय तो लाये और तू गरमागरम पकौड़ी निकाल।"

उसके जाते ही लालाजी कुर्सी खींच कर राकेश के सम्मुख बैठ गये और बोले—"अंजू के विषय में तुम्हारी क्या राय है बादशाहो?"

राकेश उनके अभिप्राय को न समझा। उसने साधारण तौर पर, किन्तु उत्साह के साथ कह दिया—"बहुत अच्छी लड़की है। भगवान करे सदा सुखी रहे और बड़ी उमर पाये और देश का गौरव बढ़ाये।

अब लालाजी ने कहा—"इसी लड़की के कारण बड़ी परेशानी रहती है। जानते तो हो कि माता-पिता के लिए कन्या का भार कितना दुखदायी होता है। लेकिन बादशाहो, देश गौरव बढ़ाने की बात तुमने अपने आशीर्वाद में खूब कही। मुझे बड़ी खुशी हुई। काश हम सब प्रतिक्षण इस बात का ध्यान रखकर चलते।"

राकेश तपाक् से बोला—"चलेंगे लालाजी चलेंगे। आप बेकार में चिन्ता करते हैं। और हां इससे विवाह करके कोई भी अपने को धन्य मानेगा। जिस घर में जायगी, वह नन्दन-कानन बन जायगा।"

लालाजी ने स्पष्ट रूप से प्रस्ताव कर दिया— 'हम लोगों की इच्छा है कि तुम इसे स्वीकार कर लो।"

राकेश ने स्वप्न में भी कल्पना न की थी कि लाला जी ऐसा प्रस्ताव करेंगे। उसके मन में आया—अमिता से भेंट न होती तो वास्तव में इससे बढ़ कर दूसरी पत्नी की कल्पना भी की नहीं जा सकती थी। पर एक नारी से सम्बन्ध स्थापित करने के पश्चात अब यह प्रस्ताव! फिर उस लड़की के साथ जिसको एक बार बहन कहा है। छि' ऐसा विचार करना भी पाप है!

कुछ गम्भीरता के साथ उसने उत्तर दिया—"लालाजी मंजू मेरी बहन है। और बहन केवल बहन होती है।"

प्रतिमा बोली—"बेटा तुम नहीं जानते कि हम लोग कितनी आशा लगाये थे। सोचती हूँ—उसका हाथ कौन पकड़ेगा। यह तो अभागिन है।"

हतप्रभ, राकेश एकाएक कोई उत्तर न दे सका।

अब लाला जी बोले—"तुम तो जानते हो कि एक राज हमारी जिन्दगी में छिपा है? तुम्हारे एक संकेत पर हमारा जीवन सुखी हो सकता है।"

अचानक राकेश के नेत्रों में अमृतलाल का सौम्य, शान्त मुख उभर आया। वह बोला—"इसका विवाह मैं तय करूँगा। मैंने वर ढूंढ़ लिया है।"

दुखी स्वर में लालाजी बोले—"इससे विवाह कौन करेगा।"

एक मिनट वे मौन रहे। फिर अतीत में डूबा हुआ उनका स्वर गूंज उठा। राकेश को प्रतीत हुआ, मानो कोई व्यक्ति बहुत दूर से कातर वाणी में चीत्कार कर रहा है।

लालाजी कह रहे थे—"बटवारे की बात है। पिण्डी से हम लोग किसी भाँति जान बचा कर लाहौर पहुँचे। तो मैं अपने बचपन के दोस्त के घर टिक गया। बलवन्त ने मना भी किया। किन्तु मैं अभागा न माना और उस रात को मेरा दोस्त पशु बन गया। पाशुविक बल के आगे विवश व्यक्ति क्या कर सकता है। उसने अपने नौकरों की सहायता से मेरे और बलवन्त के हाथ-पैर बांध दिये। फिर···फिर क्या कहूँ बेटा, यों समझ लो कि तभी अंजू का जन्म हुआ। बलवन्त की तो सुनने-बोलने की शक्ति जाती रही और ये उस दिन से ऐसे ही पड़ी रहती हैं। मैं अभागा मर कर भी न मर सका! रोज रात को न जाने कैसे उसी समय ये चीख पड़ा करती हैं।"

राकेश ने स्थिति की गम्भीरता को समझा। उसने दृढ़ स्वर में कहा—"आप बेकार दुखी होते हैं। इस राज़ को सदैव के लिये अपने सीने में दफ़ना दें। यों भी अगर पहले किसी से कह देते तो इतनी पीड़ा न सहन करनी पड़ती।"

लाला जी बोले—"अपना दुःख नहीं है, बेटा। दुःख तो अंजू का है।"

राकेश बोला—"उसे क्यों दुःख होगा? आपने उसे जन्म नहीं दिया तो क्या हुआ, पाला तो है। पुत्री न सही, धर्म-पुत्री तो है। आप मन में उसे धर्म-पुत्री ही मानिये। संसार की दृष्टि में तो वह आपकी पत्नी की पुत्री होने के नाते आपकी ही मानी जायगी। अनिष्टकारक सत्य से वह झूठ फिर भी अच्छा जिससे किसी का कल्याण हो।"

तभी प्रतिमा की सिसकी से वातावरण गूंज उठा। राकेश उठा

और उसने प्रतिमा के मस्तक पर हाथ रख दिया। फिर वह उसके बहते हुए आँसू को पोंछने लगा। अब वह बोला—"धीरज रखो चाची। अपने बेटे पर तो विश्वास करो। मैं वादा करता हूँ कि अपनी बहन की शादी ऐसी धूम से करूँगा कि लोग देखते रह जायेंगे! आपको मालूम नहीं, मेरी बड़ी इच्छा थी कि मेरे एक छोटी बहन होती, तो उसका मैं ब्याह रचाता। अपने हाथ से सजा सँवार कर विदा करता अब मैं···।"

फिर अधूरा वाक्य छोड़कर वह लाला जी की ओर उन्मुख होकर बोला—"लाला जी, अमृतलाल के विषय में आपकी क्या राय है? लड़का तो हमें बहुत पसन्द आया। पढ़ा-लिखा है। अरे साहब, जर्मनी रिटर्न है।"

इतने में संयोग से मनुष्य के कल्पना एवं प्रयत्नों से परे, बलवन्त ने आकर एक विजिटिंग कार्ड राकेश के सम्मुख रख दिया। राकेश ने उसे देखा और उसका मुख मण्डल कमल की भाँति खिल उठा। वह बोला—"लीजिये साहब, भाग्य इसको कहते हैं। जानते हैं कौन साहब हैं? श्रीमान् अमृत लाल जी। इस समय मैं भगवान को माँगता, तो वह भी मिल जाते। आप भी देख लीजिये चाची जी। अभी फ़ैसला कर देता हूँ।"

फिर उसने बलवन्त से कहा—"यहीं लिवा लाओ।"

लालाजी ने भी संकेत कर दिया। बलवन्त उसे बुलाने गया तो राकेश ने ज़ोर से पुकारा—"मंजू! यहाँ आओ।"

साथ ही उसने लालाजी से कह दिया—"दोनों एक दूसरे को देख लें, तो अच्छा है।"

मंजू और अमृतलाल ने लगभग एक ही साथ कमरे में प्रवेश किया। एक ने पूर्व के द्वार से पग रक्खा, दूसरे ने दक्षिण के। किन्तु दृष्टि दोनों की एक साथ ही एक दूसरे पर जा पड़ी और दोनों का ही मुख लज्जा से लाल हो गया। वातावरण को भूलकर दोनों ने एक दूसरे को देखा और साथ ही अभिवादन के लिये हाथ जोड़ लिये।

सभी की दृष्टि इन दोनों पर थी। राकेश का अन्तर्मन बोला—लो हाथ मिलाओ प्यारे, काम बन गया !

अब वह बोला—"आओ भाई ! बड़ी उमर है तुम्हारी। हम लोग तुम्हारी ही बातें कर रहे थे।"

अमृतलाल ने झट कह दिया—"जल्दी चलिये। सेठ मुरली मनोहर प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

राकेश के सम्मुख अमिता का प्रश्न इस समय प्रमुख न था। यह सुनकर वह समझा कि वे विवाह के लिये तैयार हैं। अतः वह बोला—"चाय तो पी लो। अंजू, जा जरा गरम चाय तो ले आ।"

अमृतलाल दुविधा में पड़ गया। वह बोला—"फ़िरोजा जी का फ़ोन आया था। भाई साहब तो वहाँ चल दिये और मुझे यहाँ भेजा है। आप जल्दी चलें।"

अनजान स्थान पर एकाएक दुख भरा संवाद देते उसे संकोच हो रहा था। पर राकेश था कि उसके ऊपर कुछ असर ही नहीं होता था।

उसे कुछ उद्विग्न एवं जल्दी मचाते देख कर राकेश बोला—"देखो भाई ! जल्दी न मचाओ। इस समय सेठजी को, भाई साहब को सबको छोड़ कर मेरी समस्या के ऊपर ध्यान दो। बात ऐसी है कि मैं चाहता हूँ, तुम्हारी कुछ सेवा करूँ !"

अमृतलाल की कुछ भी समझ में न आया। उसने चतुर्दिक दृष्टि फेरी तो देखा कि सभी की उत्सुक दृष्टि उसी के ऊपर केन्द्रित हैं। एकाएक उसके मुँह से निकल गया—"मैं कुछ समझा नहीं।"

राकेश मुसकराता हुआ बोला—"मेरी एक बहन हैं अंजना। अभी जो यहाँ थी, मैं चाहता हूँ कि उसका विवाह हो जाय। और मेरी समझ में तुम दोनों की जोड़ी बहुत उत्तम होगी।"

अमृतलाल भाग्य की विडम्बना देख कर मन-ही-मन रो पड़ा। बात उसके मन की थी। इनकार वह कर नहीं सकता था, किन्तु अमिता के सम्बन्ध में कुछ कह भी नहीं पाता था।

वह धीरे से बोला—"आप चलिये भी।"

राकेश बोला—"पहले मेरी समस्या का समाधान हो जाय तो मैं चलूं। गुण-शील, पढ़ाई-लिखाई सब में 'ए वन' है। देख तो तुम चुके ही हो। लेन-देन में लालाजी कुछ कोई-कसर नहीं उठा रखेंगे।"

तभी पर्दे के पीछे खड़ी हुई अंजना भगवान से अपना-सुख-सौभाग्य माँग बैठी। चाय की केटली और प्याला हाथ में था और साँस रोक कर निर्णय की प्रतीक्षा मनप्राण से।

अमृतलाल ने अन्य उपाय न देख धीरे से कह दिया—"मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है लेकिन इस विषय में आप भाई साहब से बात करें।"

कथन के साथ ही उसने झुक कर राकेश का चरण स्पर्श करना चाहा। लेकिन राकेश ने उसे बीच में ही रोक कर अपने वक्ष से लगा लिया और कहा—"सदैव सुखी रहो।"

अमृतलाल ने सोचा—दो वर्ष विदेश में रहकर भी मैं पोंगा रहा। सारा शरीर काँप रहा है। फिर वह बोला—"मगर आप जल्दी करिये। अस्पताल में सब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं,"

अब राकेश के चकित होने की बारी थी। वह बोला—"अस्पताल में।"

लालाजी बोले—"क्या मतलब है बेटा ?"

अमृतलाल ने अत्यन्त दुखी स्वर में कहा—"अमिता !"

राकेश लगभग चीखता हुआ बोला—"क्या हुआ अमिता को ?"

अमृतलाल के नेत्रों से आँसू टपक रहे थे। वह बोला—"हम लोगों को सदैव के लिए छोड़ जा रही है।"

राकेश पर मानो वज्रपात हुआ। उसे प्रतीत हुआ कि उसके संसार में आग लग गयी है और वह उसमें जला जा रहा है।

उसके हृदय में दुख का सागर उमड़ पड़ा, लेकिन उसकी एक बूँद भी उसके नेत्रों की कोर की राह न पा सकी। एक उच्छ्वास उसके कण्ठ से निकल कर बोझिल वातावरण में लीन हो गया। भगवान तेरी लीला ! उसके मन में आया—सत्पथ पर चलना कितना दुष्कर है ! वासना के पंक में डूब जाता, तो कुछ भी न होता। कीचड़ से निकल

की चेष्टा में अपने संसार को आग लगा बैठा।

लालाजी ने आगे बढ़ कर उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। राकेश उठ कर खड़ा हो गया और कमरे के बाहर चल दिया।

लालाजी उसके साथ थे और अमृतलाल पीछे।

तभी अंजना भीतर आयी और प्रतिमा के समीप जाकर बोली—"अच्छे लोगों को भगवान दुख क्यों देता है?"

प्रतिमा ने उसे खींच कर वक्ष से लगा लिया।

अस्पताल में सेठजी का प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता था। प्रत्येक डाक्टर, नर्स कम्पाउन्डर इधर से उधर दौड़ रहा था।

नगर के प्रमुख उद्योगपति की विपत्ति में साथ देने वालों की भी कमी न थी। किन्तु सभी के मुख पर केवल चिन्ता ही न थी। वे लोग आपस में आज की सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत रूढ़िवादिता का स्थान और उसका मूल्य ढूंढ़ रहे थे। सबको पता था कि समय के अनुसार चलने में ही कल्याण है। साथ ही उनकी दृष्टि शंकित मन से सुसंवाद सुनने की प्रतीक्षा में इमरजेन्सी वॉर्ड की ओर उठ जाती थी।

जिसको समाचार मिलता, वही दौड़ा चला आता। इधर उधर दर्जनों कारें और स्कूटर खड़े थे। कोई कह रहा था—देखा, रूढ़िवाद का दानव किस गति से मानवता का खून पी रहा है। दूसरा उत्तर दे रहा था—बलिदान की भूखी क्रान्ति के बिना ऐसे जीर्ण-जर्जर किन्तु पाशविक वृत्तियों के पोषक समाज क ध्वंस कभी सम्भव नहीं है। यदि अमिता का प्राणान्त कहीं हो गया, तो उसकी उज्ज्वल परिणाम तुम देख लोगे। मैं तो कहता हूं ऐसा भी एक दिन आ सकता है, जब विवाह के सम्बन्ध में अनुचित हस्तक्षेप संतति हत्या के समान जघन्य पाप समझा जायगा।

तभी लालाजी की कार रुकी। तो फाटक के समीप खड़े प्रतीक्षारत

कन्हई की दृष्टि अमृतलाल पर जा पड़ी। उसने आगे बढ़कर पूछा—"भैया आये ?"

अमृतलाल ने पीछे की सीट पर लालाजी के साथ बैठे हुए राकेश की ओर संकेत कर दिया।

कन्हई ने मुँह से कुछ न कहा। पर नेत्रों पर अँगोछा लगाते हुए आगे बढ़कर एक पत्र राकेश की ओर बढ़ा दिया।

राकेश ने देखा कि लिफाफे पर उसका नाम है और प्रेषक के स्थान पर तीन अक्षर जगमगा रहे हैं—अमिता।

कराहते हृदय से उसने बिलकुल निर्विकार भाव से पत्र निकाला और पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। पत्र में लिखा था :—

"प्रिय राकेश,

तुम मिले और मैंने एक स्वप्न देखा। सच मानो मेरा संसार बदल गया। पर हाय मन के मीत के साथ सुख की दो घड़ी भी न बिता पाई थी कि नियति ने राह में काँटे बिखेर दिये!

तुम्हारी प्रतीक्षा करने जा रही हूँ। साधना पूर्ण हो गई तो भेंट होगी। अन्यथा मैं जन्मजन्मान्तर तक तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी।

तुम दुखी न होना। फिरोजा कहती थी—'तुम संन्यासी हो।' सांसारिक मोह तुम्हें नहीं सतायेगा। बस, यही बात मुझे सदा शान्ति देती रहेगी।

कभी-कभी याद तो कर लिया करना। करोगे ना? मगर देखो, याद करते क्षण कभी आँखों में आँसू न आने देना—नहीं तो मुझे अपार दुःख होगा। अब क्या बताऊँ! मैंने स्वप्न देखा था कि मरणपर्व के समय तुम मेरे समीप होगे। मैं अपने देवता की गोद में सर रखकर बड़ी शान्ति से चिरनिद्रा में लीन हो जाऊँगी। पर ऐसा सम्भव न था।

फिर भी एक इच्छा है, पूरी करोगे? हो सके तो मेरी चिता को अपने हाथ से प्रज्वलित कर देना। सम्भव है, तुम्हारे पावन स्पर्श मेरी अपावन आत्मा मुक्त हो जाय!

विदा दो मेरे देवता, मेरा भाग्य ही धोखा दे गया ! मुझ अभागिन को सेवा का अवसर ही न मिला।

तुम जानते हो, मैंने अपने समस्त हृदय से, प्राणों के स्पन्दन से, अपने लोम-लोम से तुम्हें देवता मान कर पूजा है। तो अब ऐसा आशीर्वाद दो कि अगले जन्म में मैं तुम्हारी सेवा का पूर्ण अवसर पाऊँ।

तुम्हारी प्रतीक्षा में, जो तुम्हारे स्पर्श मात्र से धन्य हो गई,

अमिता।"

राकेश का हृदय चीत्कार कर उठा। उसके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। वह धीरे से कार का द्वार खोल कर नीचे उतरा। एक बार उसने अस्पताल के विशाल भवन पर दृष्टि डाली। फिर वह चीख उठा—"नहीं…नहीं… !"

और वह विक्षिप्त की भाँति उपस्थित जन-समुदाय को भूलकर दौड़ता हुआ इमरजेन्सी वॉर्ड में जा पहुँचा।

आपरेशन थियेटर का द्वार खोलते ही उसने देखा कि अमिता आपरेशन टेबुल पर लेटी हुई है।

एकाएक वह चीख उठा—"मुझे छोड़कर न जाओ अमिता !"

समीप खड़े हुए सेठजी उसे पहचान गये। उन्होंने आगे बढ़कर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कह दिया—"अब घबराने की कोई बात नहीं है। सब ठीक हो गया है। थोड़ी देर में होश भी आ जायगा।"

किन्तु राकेश के कान के परदे से ये शब्द तो टकराये अवश्य पर वह उत्तर न दे सका। मानसिक आवेग के उद्रेक से वह स्वयं चेतना-शून्य हो धरती पर गिर पड़ा।